* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

श्रीसीताजीसे प्रार्थना करते गोस्वामीजी

श्रीकृष्णको गोकुल ले जाते वसुदेव

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

ॐ नमः शिवायै गङ्गायै शिवदायै नमो नमः। नमस्ते विष्णुरूपिण्यै ब्रह्ममूर्त्यै नमोऽस्तु ते॥
नमस्ते रुद्ररूपिण्यै शाङ्कर्यै ते नमो नमः। सर्वदेवस्वरूपिण्यै नमो भेषजमूर्तये॥

वर्ष ९०

गोरखपुर, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, अगस्त २०१६ ई०

संख्या ८

पूर्ण संख्या १०७७

श्रीकृष्णकी गोकुल-यात्रा

हरि-मुख देखि हो बसुदेव।
कोटि-काल-स्वरूप सुंदर, कोउ न जानत भेव॥
चारि भुज जिहिं चारि आयुध, निरखि कै न पत्याउ।
अजहुँ मन परतीति नाहीं नंद-घर लै जाउ॥
स्वान सूते, पहरुवा सब, नींद उपजी गेह।
निसि अँधेरी, बीजु चमकै, सघन बरषै मेह॥
बंदि बेरी सबै छूटी, खुले बज्र-कपाट।
सीस धरि श्रीकृष्न लीने, चले गोकुल-बाट॥
सिंह आगैं, सेष पाछैं, नदी भई भरिपूरि।
नासिका लौं नीर बाढ्यौ, पार पैलो दूरि॥
सीस तैं हुंकार कीनी, जमुन जान्यौ भेव।
चरन परसत थाह दीन्हीं, पार गए बसुदेव॥
महरि-ढिग उन जाइ राखे, अमर अति आनंद।
सूरदास बिलास ब्रज-हित, प्रगटे आनँद-कंद॥

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर भाद्रपद, वि० सं० २०७३, श्रीकृष्ण-सं० ५२४२, अगस्त २०१६ ई०

विषय-सूची

चित्र-सूची

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹२००
सजिल्द ₹२२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹१०००
सजिल्द ₹११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**
आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**
सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**
केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | **09235400242/244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**
Online सदस्यता-शुल्क-भुगतानहेतु-gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।
अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर निःशुल्क पढ़ें।

कल्याण

***निश्चय करो*—**मीठी और हितभरी वाणी दूसरोंको आनन्द, शान्ति और प्रेमका दान करती है और स्वयं आनन्द, शान्ति और प्रेमको खींचकर बुलाती है।

मीठी और हितभरी वाणीसे आत्माका पोषण होता है, मनको पवित्र शक्ति प्राप्त होती है, बुद्धि निर्मल होती है और जीवनकी क्रियाएँ सुचारुरूपसे सुव्यवस्थित चलती हैं।

मीठी और हितभरी वाणीमें भगवान्‌का आशीर्वाद उतरता है और उससे अपना-पराया सबका कल्याण होता है।

मीठी और हितभरी वाणीमें ही सत्यकी रक्षा होती है और उसीमें सत्यकी शोभा है।

***याद रखो*—**मुखसे कभी ऐसा शब्द मत निकालो, जो किसीका जी दुखाये और अहित करे।

कड़वी और अहितकारिणी वाणी सत्यको नहीं बचा सकती और उसमें रहनेवाले आंशिक सत्यका स्वरूप भी बड़ा कुत्सित और भयानक हो जाता है।

यह निश्चय करो कि जिसकी जबान गन्दी होती है, उसका मन भी गन्दा होता है।

एक बार महामना मालवीयजीसे किसी विशिष्ट विद्वान्‌ने कहा—'आप मुझे सौ गाली देकर देखिये, मुझे गुस्सा नहीं आयेगा।' मालवीयजी महाराजने उत्तर दिया—'आपके क्रोधकी परीक्षा तो पीछे होगी, मेरा मुँह तो पहले ही गन्दा हो जायगा।'

दूसरा कोई कड़वा बोले, गाली दे तो उसे ग्रहण मत करो—तुमपर उसका कोई असर नहीं होगा, तुमपर तो तभी असर होता है, जब तुम उसे ग्रहण करते हो।

तुम जिसकी भाषा नहीं समझते, चाहे वह कितनी ही गाली दे तुम्हें कोई दुःख नहीं होता; या तुम शब्दका अर्थ समझनेपर भी जबतक यह समझ रहे हो कि वह दूसरे किसीको गाली बक रहा है, तबतक भी दुःख नहीं होगा। दुःख तब होगा, जब तुम समझोगे कि गाली मुझको दे रहा है। इसका मतलब यह कि तुम गालीको ग्रहण कर रहे हो!

रज्जबने कहा है—

रज्जब रोष न कीजिये कोई कहो क्यों ही।
हँसकर उत्तर दीजिये हाँ बाबाजी! यों ही॥

× × ×

***याद रखो*—**भगवान् मंगलमय हैं, जगत् भगवान्‌से भरा है अतएव तुम भी मंगलमें ही निवास करते हो।

जैसे बादलसे सूर्य ढका रहता है और जैसे राखसे आग ढकी रहती है, वैसे ही तुम्हारे अविश्वाससे मंगलमय भगवान् ढके हुए हैं। वास्तवमें उनका मंगलमय स्वरूप नित्य और सर्वत्र है।

प्रत्येक स्थितिमें, प्रत्येक सिद्धि-असिद्धिमें, प्रत्येक चिन्तनमें भगवान्‌को—उनके मंगलमय स्वरूपको देखो। फिर तुम्हें कभी अमंगलके दर्शन नहीं होंगे। तुम मंगलमय भगवान्‌को भूलकर, मंगलमयी भगवत्कृपाको भूलकर—नित्य अमंगलका चिन्तन, अमंगलकी आशंका और अमंगलका भय करते हो, इसीसे व्यर्थ ही तुम्हारे सामने नाना रूपोंमें अमंगल आ खड़ा होता है। वह तुम्हारी ही कल्पनाका है, वास्तवमें नहीं है।

***यह निश्चय करो*—**मैं सर्वत्र, सर्वथा और सर्वदा मंगलसे घिरा हूँ, मंगलसे भरा हूँ, मंगलमें डूबा हूँ, मंगलसे सना हूँ, मंगलसे तना हूँ और मेरे बाहर-भीतर, भूत-भविष्य सभी मंगलसे ओतप्रोत हैं; क्योंकि नित्य मंगलमय भगवान्‌का मुझमें नित्य निवास है और मैं नित्य मंगलमय भगवान्‌में स्थित हूँ।

'शिव'

आवरणचित्र-परिचय—

माता जानकीसे गोस्वामीजीकी प्रार्थना

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

गोस्वामी तुलसीदासजी भगवान् श्रीराम और जगज्जननी जानकीजीके तत्त्वत: ऐक्यका प्रतिपादन करते हुए कहते हैं कि मैं उन श्रीसीतारामजीके चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जिन्हें दीन अत्यन्त प्यारे हैं तथा जो शब्द और अर्थ एवं जल और जलकी लहरके समान कहनेमात्रको तो भिन्न हैं, पर तत्त्वत: भिन्न नहीं हैं। वस्तुत: तुलसीदासजीकी भक्ति राममयी नहीं, सीताराममयी है; अत: उन्होंने स्थान-स्थानपर श्रीसीतारामजीकी साथ-ही-साथ वन्दना की है, यथा—

सीय राम मय सब जग जानी । करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

गोस्वामीजीका भक्ति-सिद्धान्त विशिष्टाद्वैतवाद था, उनके विचारमें ब्रह्म और माया—दोनों सत्य तथा अनादि हैं। इसीलिये उन्होंने ब्रह्म (श्रीराम)-के साथ उनकी शक्तिके रूपमें माया (श्रीजानकीजी)-की भी वन्दना की है—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥

गोस्वामीजीका श्रीजानकीजीके प्रति मातृभाव था। प्रकृतिमें यह सार्वभौमरूपसे देखा जाता है कि माता करुणामयी होती है, अत: पुत्र अपनी बात माताके सम्मुख ही रखकर उनसे ही पितासे अनुमोदनहेतु कहता है। वैसे ही गोस्वामीजी भी माता जानकीसे अपनी करुण-कथा निवेदितकर कहते हैं—हे माता! कभी अवसर हो तो कुछ करुणाकी बात छेड़कर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी भी याद दिला देना, इसीसे मेरा काम बन जायगा। आप उनसे यों कहना कि एक अत्यन्त दीन, सर्व साधनोंसे हीन, मनमलीन, दुर्बल और पूरा पापी मनुष्य आपकी दासी (तुलसी)-का दास कहलाकर और आपका नाम ले-लेकर पेट भरता है। इसपर प्रभु कृपा करके पूछें कि वह कौन है, तो मेरा नाम और मेरी दशा उन्हें बता देना। कृपालु रामचन्द्रजीके इतना सुन लेनेसे ही मेरी सारी बिगड़ी बात बन जायगी। हे जगज्जननी जानकीजी! यदि इस दासकी आपने इस प्रकार वचनोंसे ही सहायता कर दी तो यह तुलसीदास आपके स्वामीकी गुणावली गाकर भवसागरसे तर जायगा—

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ॥

एक अन्य पदमें भी वे श्रीसीताजीसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—हे जानकीमाता! कभी मौका पाकर श्रीरामचन्द्रजीको मेरी याद दिला देना। मैं उन्हींका दास कहाता हूँ, उन्हींका नाम लेता हूँ, उन्हींके लिये पपीहेकी तरह प्रण किये बैठा हूँ, मुझे उनके स्वाती-जलरूपी प्रेमरसकी बड़ी प्यास लग रही है। यह तो आप जानती ही हैं कि करुणानिधान रामजीका स्वभाव बड़ा सरल है; उन्हें अपना गुण, शत्रुद्वारा किया हुआ अनिष्ट, दासका अपराध और दिये हुए दानकी बात कभी याद ही नहीं रहती। उनकी आदत भूल जानेकी है; जिसका कहीं मान नहीं होता, उसको वह मान दिया करते हैं; पर वह भी भूल जाते हैं। हे माता! तुम उनसे कहना कि तुलसीदासको न भूलिये; क्योंकि उसे मन, वचन और कर्मसे स्वप्नमें भी किसी दूसरेका आश्रय नहीं है—

कबहुँ समय सुधि द्यायबी, मेरी मातु जानकी।
जन कहाइ नाम लेत हौं, किये पन चातक ज्यों, प्यास प्रेम-पानकी॥
सरल कहाई प्रकृति आपु जानिए करुना-निधानकी।
निजगुन, अरिकृत अनहितौ, दास-दोष सुरति चित रहत न दिये दानकी॥
बानि बिसारनसील है मानद अमानकी।
तुलसीदास न बिसारिये, मन करम बचन जाके, सपनेहुँ गति न आनकी॥

जिस समय गोस्वामीजी काशीमें अस्सीघाटपर रह रहे थे, एक दिन रातमें कलियुग मूर्तरूप धारणकर उनके पास आया और उन्हें त्रास देने लगा। गोस्वामीजीने हनुमान्‌जीका ध्यान किया और हनुमान्‌जीने उन्हें विनयके पद रचनेके लिये कहा। इसपर गोस्वामीजीने विनय-पत्रिकाकी रचनाकर उसे भगवान्‌के चरणोंमें समर्पित कर दिया। श्रीहनुमान्‌जी, भरतजी, लक्ष्मण और शत्रुघ्नजीने उसपर हस्ताक्षर करनेके लिये प्रभुसे निवेदन किया। सबकी बात सुनकर श्रीरामजीने मुसकराकर कहा कि मुझे उसकी सब खबर मिल गयी है। तात्पर्य है कि श्रीजनकनन्दिनीजीने पहलेसे ही तुलसीदासजीकी स्थितिकी सूचना प्रभुको दे दी थी और उनके अनुमोदनपर रघुनाथजीने विनय-पत्रिकापर अपनी सही कर दी।

इस प्रकार माता जानकीसे प्रार्थना करनेपर गोस्वामीजीको प्रभुकी कृपा प्राप्त हो गयी।

परोपकार

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

१–लोक–सेवा खूब करनी चाहिये। कोई–कोई सेवा भजनसे भी बढ़ जाती है। समयपर की हुई सेवा विशेष लाभप्रद होती है।

२–निष्कामभावसे लोक–सेवा करनेसे पापोंका नाश होकर भगवान्‌में प्रेम हो सकता है।

३–निष्कामभावसे सब भाइयोंकी सेवा करनेसे भी अन्त:करणकी शुद्धि होकर बहुत ही शीघ्र श्रीभगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। मनसे सबका हित चाहना ही सेवा है और सबको श्रीभगवान्‌की भक्तिमें लगानेकी चेष्टा करना तो परम सेवा है। इन बातोंसे भगवान् बहुत प्रसन्न होते हैं।

४–संसारकी परम सेवा करनेवालोंके उद्धारमें तो संशय ही नहीं है। केवल ऐसा भाव रखनेवालोंका भी उद्धार हो सकता है।

५–गंगा–किनारे प्याऊ लगा दे तो यह ठीक नहीं। प्याऊ लगाना हो तो मरुभूमिमें लगाये, यह देश इसका पात्र है।

६–वर्तमान समयमें अकाल आदि जो–जो आपत्तियाँ पड़ी हुई हैं, वहाँ अन्न आदिकी सहायता देना सात्त्विक दान है।

७–जो अपना तन, मन, धन, सर्वस्व संसारके मनुष्योंको भगवद्भक्तिमें लगानेके लिये ही अर्पित समझता है, उसे अर्पण करना नहीं पड़ता, उसके लिये सर्वस्व भगवान्‌का है और वह उसीके काममें लग रहा है। लोगोंको भगवद्भक्तिमें लगानेके लिये, वह अपने शरीरकी खाल खिँचवानेमें भी संकोच नहीं करता। उसका जीवन लोगोंके उद्धारके लिये ही है। वह भक्तिके प्रचारके लिये प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणोंतककी आहुति दे डालता है।

८–परम सेवा वास्तवमें उसीको कहते हैं, जिस सेवाके करनेके पश्चात् कुछ भी कार्य शेष न रहे, अर्थात् संसारी मनुष्योंको भगवत्प्रेममें लगाकर उन्हें भगवान्‌के परम धाममें पहुँचा देनेका नाम ही वास्तवमें परम सेवा है।

९–अपना पेट तो पशु भी भरते ही हैं, उत्तम उसीको समझना चाहिये कि जो दूसरेके हितके लिये अपने प्राण भी देनेके लिये तैयार है।

१०–दूसरोंको जो फायदा पहुँचाता है, वह अपने–आपको ही फायदा पहुँचाता है, जैसे अपने हाथकी अंगुलियोंमेंसे किसी अंगुलीका फायदा अपना ही फायदा है। वास्तविक दृष्टिमें तो एक भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई है ही नहीं, फिर किसका फायदा किसका नुकसान! किसीको नुकसान हुआ हो तो फायदा हो। किंतु व्यावहारिक दृष्टिमें भी दूसरोंको जो फायदा होता है, वह अपना ही होता है। यह बात समझमें नहीं आये तो इस प्रकार समझना चाहिये कि निष्कामभावसे दूसरोंको जो फायदा पहुँचाया जाय, वह आपको भगवत्प्राप्तिके नजदीक पहुँचानेवाला है।

११–किसी भाईका कोई रोजगार लगा देता है तो मुझे इतनी प्रसन्नता होती है कि मेरे सगे भाईको कामपर लगा दिया।

१२–जिन आचरणोंके द्वारा जीवोंको परम सुख मिले, वही परम सेवा है।

१३–यावन्मात्र जीवोंकी सेवा करनी चाहिये और उनको सुख पहुँचाना चाहिये।

१४–बीमारीसे बहुत शिक्षा मिलती है। मन्दाग्निकी बीमारी साधकके लिये बहुत अच्छी है; क्योंकि धीरे–धीरे आदमीके सारे शरीरको कमजोर करके सावधान करती रहती है तथा अन्तकालतक चेत रहता है।

१५–विश्वके समस्त जीवोंको सुख–सुविधा पहुँचाना और उनके हितकी व्यवस्था करना ही मनुष्यका मनुष्यत्व है, इसीमें उसकी धार्मिकता है।

१६–संसारकी सुव्यवस्था करने, सबको सुख पहुँचाने और ऐसा करते–करते परमात्माको प्राप्त कर लेनेके लिये ही मनुष्यकी रचना की गयी है।

१७–परमात्माकी सृष्टिमें जड–चेतन सभी अपनी–अपनी शक्तिके अनुसार परस्पर सबका उपकार साधन कर रहे हैं। इसलिये सबकी यथायोग्य उन्नतिमें ही अपनी उन्नति है और विनाशमें ही अपना विनाश है।

१८–जो पुरुष प्रत्येक जीवको अपना प्रिय भाई मानकर सबका हित चाहता हुआ सबके साथ यथायोग्य सद्व्यवहार करता है, परमपिता परमेश्वर स्वाभाविक ही उसपर प्रसन्न होते हैं और सारे भाई भी उससे प्यार करते हैं।

१९–ये सब चराचर प्राणी हमारे भाई ही नहीं हैं, अपितु इनके हृदयमें हमारे परम पूजनीय इष्टदेव परमेश्वर विराजमान हैं। वे ही इनके रूपमें प्रकट हो रहे हैं। इस नातेसे इन्हें सुख पहुँचाना परमेश्वरको सुख पहुँचाना है और इन्हें दु:ख देना परमेश्वरको दु:ख देना है।

२०–मनुष्यकी तो रचना ही की गयी है सब जीवोंके यथायोग्य पालन और संरक्षणके लिये। वही यदि इन्हें मारनेपर उतारू हो जायगा तो फिर इनको कौन पालेगा और ये कैसे जी सकेंगे?

२१–मनुष्यमात्रका यह परम कर्तव्य है कि वह प्राणपणसे ऐसी ही चेष्टा करे; जिसमें सब चराचर जीवोंका परम हित हो।

२२–किसी हालतमें किसीका किसी प्रकारसे अहित करना ही ईश्वरके कानूनके विरुद्ध कार्य करना है।

२३–दूसरोंको कष्ट पहुँचाना अपने ही आत्माको कष्ट पहुँचाना है; क्योंकि अपने आत्माके अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं।

२४–मनुष्य यदि किसीको दु:ख दे रहा है तो वह वस्तुत: प्रकारान्तरसे अपनेको ही दे रहा है और यदि किसीको सुख पहुँचा रहा है तो वह भी अपनेको ही पहुँचा रहा है।

२५–जो मनुष्य दूसरोंसे घृणा, द्वेष और वैर करता है अथवा उनके अनिष्टकी इच्छा करता है, वह मनुष्यत्वसे तो गिरा हुआ है ही, सच पूछिये तो पशुओंसे भी गया-गुजरा है।

२६–मनुष्यका शरीर खान-पान, ऐश-आराम और भोग भोगनेके लिये नहीं मिला है। ये सब तो अन्य योनियोंमें भी प्राप्त हो सकते हैं। मनुष्यका जन्म तो प्राणिमात्रके हितकी चेष्टा करनेके लिये ही मिला है। अतएव सब लोगोंको चाहिये कि अपने तन, मन और धनद्वारा नि:स्वार्थभावसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी सेवाके लिये तत्परतासे चेष्टा करें।

२७–सम्पूर्ण संसारके प्राणियोंमें एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो प्राणिमात्रकी सेवा कर सकता है।

२८–किसीके साथ जो प्रेम करना है, वह भगवान्‌के साथ ही प्रेम करना है। इस प्रकारके प्रेमपूर्ण व्यवहारके प्रभावसे हम भगवान्‌के परम प्रिय बन जायँगे।

२९–प्रेम करनेवालेको प्रेम मिलता है और द्वेष करनेवालेको द्वेष।

३०–सबसे प्रेम बढ़ाइये। मेरे द्वारा दूसरेका हित कैसे हो, निरन्तर यही बात सोचते रहना चाहिये।

३१–चराचर ब्रह्माण्ड ईश्वर है, सबको उसकी सेवा करनी चाहिये, उसकी सेवा ही ईश्वरकी सेवा है, संसारको सुख पहुँचाना ही परमात्माको सुख पहुँचाना है।

३२–परमात्मा समस्त भूतोंकी आत्मा हैं, सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी हैं, इसलिये सबकी सेवा भगवान्‌की ही सेवा है।

३३–यह नियम ले लें कि शरीरसे वही कार्य निष्कामभावके साथ किया जायगा, जिससे दूसरेका उपकार हो। इसके समान कोई भी धर्म नहीं है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजीने कहा है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

—इस नियमको धारण कर लेनेसे भी संसारसे मुक्ति हो जाती है।

३४–दूसरोंका उपकार करनेकी आदत डालनी चाहिये, यह बड़े महत्त्वकी बात है कि अपनेसे किसीका उपकार बन जाय, किंतु वह उपकार होना चाहिये उदारता और दयाबुद्धिसे।

३५–सबसे बढ़िया बात क्या है? अपने साथ जो बुराई करे, उसके साथ भी भलाई करे।

३६–धन-सम्पत्ति, शारीरिक सुख और मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा आदिको न चाहते हुए ममता, आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर मन, वाणी, शरीर और धनके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत होकर उन्हें सुख पहुँचानेकी चेष्टा करना 'सेवा-साधन' कहलाता है। इस साधनसे साधकके चित्तमें निर्मलता और प्रसन्नता होकर उसे भगवत्प्राप्ति हो जाती है।

३७–प्यासेको पानी, नंगोंको वस्त्र, बीमारको औषध

और आतुरको अभयदान आदि सेवाके साधन हैं।

३८-सेवा-साधना तीन प्रकारके भावोंसे की जा सकती है—सब एक ईश्वरकी ही संतान होनेके कारण सबको अपना 'बन्धु' मानते हुए, आत्मदृष्टिसे सबको अपना 'स्वरूप' समझते हुए और परमात्मा ही सब भूतोंके हृदयमें स्थित है इसलिये सबको साक्षात् 'परमेश्वर' समझते हुए। इन तीन भावोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठता है।

३९-ममता, आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर नि:स्वार्थभावसे की हुई थोड़ी सेवा भी अधिक मूल्यवान् होती है।

४०-उत्तम देश, काल और पात्रके प्राप्त होनेपर जो न्यायानुकूल सेवा की जाती है, वही सेवा महत्त्वपूर्ण होती है।

४१-सेवा-साधनमें क्रियाकी अपेक्षा भावकी प्रधानता है।

४२-अपनेसे जो बड़े हैं, पूज्य हैं, दुखी हैं, लाचार हैं, उनकी सेवाका और भी अधिक महत्त्व है।

४३-कोई भी मिल जाय, उसे देखकर प्रसन्न होना चाहिये। सबसे मीठा वचन बोलना चाहिये। प्रेमका व्यवहार करना चाहिये। अपनी दृष्टिसे सबको भगवान्‌का स्वरूप समझना चाहिये। सेवा भी इसी भावसे करनी चाहिये।

४४-सेवाका इतना भारी प्रभाव है कि उससे भगवान् अपने-आप मिल सकते हैं। इसलिये तन-मन-धनसे दीन-दुखियोंकी, माता-पिता आदि सभी गुरुजनोंकी सेवा करनी चाहिये।

४५-हमें भगवान्‌ने रुपये, भोग-पदार्थ, ऐश्वर्य आदि जो कुछ भी दिया है, वह यदि किसी प्रकार भी दूसरोंकी सेवामें लगे तो अपना अहोभाग्य समझना चाहिये।

४६-कहीं भी सेवाका अवसर मिल जाय तो समझना चाहिये कि असली धन मिल गया।

४७-सेवाके दो साधन—दाम और काम—बड़े महत्त्वके हैं। एकमें ऐश्वर्यका त्याग है, दूसरेमें शारीरिक परिश्रम है।

४८-सेवाका काम मिल गया तो ऐसी प्रसन्नता होनी चाहिये मानो राम मिल गये।

४९-सेवाके कई स्वरूप हैं। दूसरोंको मान-बड़ाई देना भी सेवा ही है। सेवा रत्नोंकी ढेरी है। उसे लूटनेकी चीज समझकर खूब लूटना चाहिये।

५०-कोई भी नीचा काम—जैसे पैर धुलाना, हाथ धुलाना, पत्तल उठाना आदि मिल जाय तो समझना चाहिये कि भगवान्‌की विशेष दया है।

५१-यदि किसी बीमारकी टट्टी-पेशाब उठानेको मिल जाय, तब तो भगवान्‌की पूर्ण दया समझनी चाहिये।

५२-सेवा-कार्यमें जितना उच्च भाव रखा जा सके रखना चाहिये। यदि सेवा-कार्यको साक्षात् परमात्माकी सेवा समझा जाय, तब तो कहना ही क्या है? उससे परमात्मा बहुत जल्दी मिल सकते हैं।

५३-नर-सेवाको नारायणकी सेवा बनाना सेवकके हाथकी बात है।

५४-किसीकी सेवा या किसीका उपकार करके उसे कहना नहीं चाहिये; क्योंकि अपने उपकारोंको प्रकट करनेसे अभिमानकी वृद्धि होती है और अभिमानको कोई भी सहन नहीं कर सकता।

५५-सेवक होकर यदि अपने सेवाकार्यको गिना दे, उसका अहसान कर दे तो उस सेवाकी कीमत वहीं घट जाती है—निष्कामभावमें कलंक लग जाता है।

५६-जरा-सी खटाई पड़ जानेपर जिस प्रकार दूध एकदम फट जाता है, उसी प्रकार उत्तम सेवारूप दूधमें अहंकारपूर्ण वचनकी खटाईके पड़ जानेपर वह सारी सेवा व्यर्थ हो जाती है।

५७-अपने उत्तम कर्मोंको गिना देनेसे वे कर्म सर्वथा व्यर्थ हो जाते हैं।

५८-हमें भजन, ध्यान, सेवा, पूजा और परोपकारादि उत्तम कर्म करने चाहिये तथा उनका बखान अपने मुँहसे कभी नहीं करना चाहिये।

५९-कहते हैं, किसी दानीके दानकी प्रशंसा की गयी तो वह रोने लगा। उससे रोनेका कारण पूछा गया तो वह बोला—'धन उसका, देनेवाला वह, मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ। लोग मुझे दानी कहते हैं, भला मैं प्रभुके सामने क्या मुँह दिखाऊँगा?'

६०-जो सच्चे दानी होते हैं, उन्हें तो दान देनेका कोई अभिमान ही नहीं होता।

सर्वकल्याणकारी वेद

(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

वेदाध्ययन आचार्यपूर्वक ही है। जैसे गुरुओंने अध्ययन किया है, वैसे ही अध्येता अध्ययन करना चाहते हैं। स्वतन्त्र पहला कोई भी वेदोंका अध्येता नहीं है। कोई भी वेदोंका कर्ता निश्चित नहीं है, प्रत्युत वेदोंकी नित्यता सिद्ध होती है। इस तरह वेदोंकी ही शास्त्रता एवं मान्यता सिद्ध है।

वेद ही सार्वदेशिक कहे जा सकते हैं; क्योंकि वे किसी देशविशेषकी भाषामें नहीं हैं। जैसे परमेश्वर सर्वसाधारण है, वैसे ही उसका वेद भी सर्वसाधारणकी भाषामें ही है। अन्यान्य धर्मग्रन्थ भिन्न-भिन्न देशोंकी भाषाओंमें हैं। कहा जा सकता है कि वेद भी तो आर्योंकी संस्कृत मातृभाषामें ही है, फिर वे ही कैसे सार्वदेशिक हो सकते हैं? परंतु यह कहना संगत नहीं है; क्योंकि संस्कृत भाषा वेदभाषा है, मानुषी भाषा नहीं। इसीलिये वाल्मीकीय रामायणके सुन्दरकाण्डमें संस्कृता वाक्का मानुषी वाक्से पृथक् उल्लेख है। श्रीहनुमान्जी सोचते हैं कि मुझे अवश्य ही मानुषी वाक् बोलनी चाहिये, दूसरी तरहसे महाभागा श्रीजानकीको समझाया नहीं जा सकता—**'अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्। मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥'** (वा०रा० ५। ३०। १९) यदि मैं ब्राह्मणकी तरह संस्कृता वाक् बोलूँगा, तब तो मुझे रावण समझकर श्रीमती सीता माता भयभीत होंगी—**'यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्। रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥'** (वा०रा० ५। ३०। १८) द्विजातियोंकी भी संस्कृत निजी भाषा नहीं किंतु देवभाषा ही है। ब्राह्मण शब्दशास्त्राभ्यासी होनेके कारण ही संस्कृता वाक् बोलते थे। इसलिये 'नैषध' में यह लिखा है कि भिन्नदेशीय राजाओंके संस्कृतभाषा बोलनेके कारण देवताओंकी पहचान नहीं हुई—**'सौवर्गवर्गो न नरैरचिह्नि।'**

इसके अतिरिक्त वेद देवभाषा संस्कृता वाक्में भी नहीं है, इसीलिये शब्दोंके लौकिक तथा वैदिक दो प्रकारके संस्कार होते हैं। लौकिक संस्कार लोक तथा वेद दोनोंमें ही बराबर है। वे व्याकरणादि सूत्रोंके ही अनुसार होते हैं। इसीलिये शाब्दिकोंका कहना है—**'छन्दसि दृष्टानुविधिः'** छन्दमें दृष्ट लक्ष्यके अनुसार ही संस्कार मान्य है। व्याकरणमें वैदिकी प्रक्रिया पृथक् है, अतः वहाँ लक्ष्यका ही प्राधान्य है, संस्कारका नहीं। वैदिक मन्त्र शब्द, स्वर और छन्दोंसे नियन्त्रित होते हैं, लौकिक नहीं। वैदिक वाक्योंका स्वरूप और अर्थ निरुक्त एवं प्रातिशाख्यसे ही नियमित हैं, संस्कृत वैसी नहीं है। अतः वेदभाषा संस्कृतभाषासे भी विलक्षण है। यह दूसरी बात है कि उसके साथ कुछ तुल्यता अधिक मिल जाय। इसीलिये वेद किसीके पक्षपाती नहीं हैं।

जैसे भगवान् सर्वत्र समान हैं, वैसे ही उनका वैदिक धर्म भी साक्षात् या परम्परया प्राणिभावका परम उपकारी है, परंतु पूर्वकथानुसार अधिकारविशेषका निर्णय इनका असाधारण गुण है। जैसे कोई औषधि किन्हींके लिये हितकर और किन्हींके लिये अहितकर होती है,

किन्हीं औषधोंका किन्हीं यन्त्रों तथा पात्रोंमें सुपरिणाम और उन्हींका दूसरे यन्त्रों तथा पात्रोंमें दुष्परिणाम होता है, वैसे ही उन विचित्र-शक्तिसम्पन्न वैदिक शब्दों तथा कुछ कर्मोंका कहीं सुपरिणाम और कहीं दुष्परिणाम भी हो जाता है। उसी स्थितिके आधारपर ही वेदोंके उच्चारण, श्रवण और अग्निहोत्रादि कर्मोंमें शुद्ध द्विजाति पुरुषोंको ही अधिकार है। अशौचग्रस्त तथा पतित त्रैवर्णिकों या व्रात्योंका उक्त कार्योंमें अधिकार नहीं है। अधिकार-विवेचनमें पक्षपातशून्य केवल हितकामनासे ही नियम है। राजसूय यज्ञमें केवल क्षत्रियका अधिकार है, ब्राह्मण-वैश्यका नहीं। वैसे ही वैश्य-स्तोममें केवल वैश्यका ही अधिकार है। इसी तरह किसीमें रथकारका ही और किसीमें स्थपतिका ही अधिकार है। ब्राह्मणके लिये मद्यबिन्दुपानमें ही मरणान्त प्रायश्चित्त है, औरोंके लिये वैसा नहीं। ब्राह्मणको सर्वत्याग, क्षत्रियको साम्राज्य, गृहस्थको द्रव्यदानमें पुण्य, सर्वमान्य संन्यासीको द्रव्यदानमें पाप, स्वधर्मबहिर्मुख ब्राह्मणको भी नरक, स्वधर्मनिष्ठ अन्त्यजको भी दिव्य लोकप्राप्ति, यह सब केवल वस्तुस्थितिका अनुसरण है। माता शिशुके हाथसे ईख छीन लेती है, परंतु मिसरी दे देती है। क्या यहाँ द्वेष है?

कहा जा सकता है कि श्रवणादिके अनधिकारियोंको श्रवणादिद्वारा वेद अनुपकारक होनेसे वेदोंमें विषमता आ जायगी, परंतु यह ठीक नहीं है; क्योंकि धनुष आदिके धारण करनेमें असमर्थोंके लिये धनुष-धारणका निषेध और कटु औषधोंमें भीरु लोगोंके लिये उन औषधोंका निषेध जैसे विषमताका मूल नहीं होता, वैसे ही अनधिकारियोंके लिये वेद तथा तदुक्त कर्मोंका निषेध अनुचित नहीं है। कहा जा सकता है कि जैसे योग्यता-सम्पादनके अनन्तर बालकोंका भी अधिकार है, तो वैसे ही स्वधर्मानुष्ठानद्वारा जन्मान्तरमें द्विजत्व-सम्पादनसे अधिकार हो ही जाता है, परंतु जैसे जड़, अन्ध, षण्ढ, बधिर, उन्मत्त, मूक आदिकोंमें श्रवणादिका लौकिक सामर्थ्य नहीं है, वैसे ही कुछ असामर्थ्य शास्त्रसे ही गम्य है। जैसे लौकिक सामर्थ्य सबको नहीं है, वैसे ही अलौकिक सामर्थ्य भी सबको नहीं है। पुराणोंद्वारा वेदार्थ-ज्ञान, शम-दमादि मानव-सामान्य धर्मों तथा सर्वशास्त्रफल भगवद्भक्ति और ज्ञानमें मनुष्यमात्रका अधिकार है और उसीके द्वारा सबका परमकल्याण भी होता है। भगवन्नामादि वैदिक धर्मसे मनुष्यकी तो कौन चलाये, गृध्र, बन्दर, भल्लूकतककी परम सद्‌गति हुई और होती है—***'पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना। गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना॥ आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥'*** (रा०च०मा० ७।१३०।छंद १)

अत: स्पष्ट है कि देश-जातिपक्षपातके बिना यथाधिकार वेद सर्वकल्याणकारी है।

'गंगाधर भगवान् शिव और गंगा'

(श्रीसतीशचन्द्रजी चौरसिया 'सरस')

(१)

गंगाधर भगवान् शम्भु ने, श्रुति वेदों का सार लिया।
कर गंगा प्राकट्य जगत की, रक्षा कर उद्धार किया॥

शिव की परामूर्ति है गंगा, जगधात्री जल रूपा है।
आरोग्य दायिनी कर्म, भक्ति, अरु ज्ञान त्रिवेणी रूपा है॥

(२)

धर्म रूपिणी गंगा मैया, भुक्ति मुक्ति वर देती है।
यत्र, तत्र, सर्वत्र, सभी में पावनता भर देती है॥

ममता मयी मातु है गंगा, परम तीर्थ का रूप लिये।
अक्षय होते अनुष्ठान सब, जो गंगा में जायँ किये॥

भगवान्‌से अन्तरंगता

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

जब हम भगवान्‌के हो जायँगे, तब स्वाभाविक ही हम भगवान्‌के अनुकूल कार्य करेंगे। यह बात ध्यानमें रखनेकी है कि हम किसीके हो भी जायँ और उसके प्रतिकूल कार्य करें—ये दोनों बातें नहीं हो सकती हैं। यदि हम किसीके हो गये तो उसके अनुकूल बन गये। हमारा प्रत्येक कार्य उसके अनुकूल होगा। अनुकूल कार्य कौन-सा है? जिसमें उसकी रुचि है। जो वह चाहता है। इससे हम भगवान्‌की रुचि देखते रहेंगे कि वे क्या चाहते हैं। इसलिये सदाचार अपने आप आ जायगा। इसके बाद रुचि देखते-देखते उनका मन हमारे सामने प्रकट हो जायगा। वे अपने-आपको खोल देंगे। वे अपने रहस्यको बता देंगे। वे अपनी छिपी चीजको दिखा देंगे। वे अपना परदा हटा देंगे। उस समय उनका जो असली रूप है, वह हम देखेंगे। इसीलिये यह आदिपुराणका वचन है, जिसमें अर्जुनसे भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

गीतामें भी आया है **'यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः'** और यहाँ भी आया है **'तत्त्वतः'**। भगवान्‌में क्या विशेषता है, भगवान्‌की क्या महिमा है, भगवान्‌की पूजा कैसे करनी चाहिये? भगवान्‌में कैसी श्रद्धा होनी चाहिये और भगवान् क्या चाहते हैं? इन बातोंको हम शास्त्रके द्वारा ऊपर-ऊपरकी बात सब जान लेते हैं। कोई महापुरुष हो, उसकी पूजाका विधान सब लोग ऊपरसे जान लेते हैं, परंतु उस महापुरुषको अमुक चीज खानेका खास शौक है। वह बताता नहीं है; क्योंकि यह साधारण बात तो है नहीं। वहाँ तो जो पब्लिकमें भोग रखा जाता है वह रख दिया गया नियमानुसार, परंतु जो अन्तरंग होगा, उससे वह कह देगा कि भाई! मुझे इस चीजका शौक है। यह चीज मुझे गुपचुप ला दिया करो और हम खा लिया करेंगे। ऐसा होता है। केवल खानेकी बात नहीं है। हमारे मनमें कई तरहकी बातें होती हैं। वे सब बातें हम पब्लिकमें नहीं कर सकते। सबके सामने वे ही बातें कहते हैं, जो सबके सामने कहनेके लिये होती हैं, परंतु अपने मनकी बात—अन्तरंग बात हम वहाँ कहते हैं, जहाँ हमें संकोच नहीं होता है। इसलिये यह सिद्ध है कि जिसके सामने हमारा संकोच निकल गया, जो अन्तरंग हो गया, उससे कहते हैं।

भगवान्‌की क्या महिमा है—**'मन्माहात्म्यम्'**, भगवान्‌की सेवा कैसे होनी चाहिये—**मत्सपर्याम्**, भगवान्‌में श्रद्धा कैसे करनी चाहिये—**'मच्छ्रद्धाम्'** और **'मन्मनोगतम्'**—भगवान्‌के मनमें क्या है? इन सारी चीजोंको शास्त्रसे हम लोग जानते हैं। जो पूजाकी पद्धति है, वह हम जानते हैं। उस पद्धतिके अनुसार ही पूजा करते हैं। जैसे कोई राजगद्दीपर आसीन राजा है, उसकी किस विधिसे पूजा होनी चाहिये, राजाका कैसे सम्मान होना चाहिये, दरबारमें किस पोशाकमें कैसे बैठना चाहिये—यह सब नियम बने हुए हैं और उन नियमोंके अनुसार बरताव होता है, परंतु उस महाराजाके मनमें कोई और अपनी बात हो—व्यक्तिगत, जो नियमोंमें नहीं है, परंतु जो उसके लिये प्रीतिकर है, उस बातको वह उसीसे कहता है, जो अन्तरंग है। उससे चुपकेसे कह देगा। राजदरबारमें दीवानसे नहीं कहेगा, मन्त्रीसे नहीं कहेगा; क्योंकि राजाका अन्तरंग वह दीवान नहीं है, मन्त्री नहीं है।

इसीलिये भक्तिमें जो पाँच भाव हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इसमें थोड़ी-सी बात दास्यकी ले लीजिये। एक राजा है और उसकी सब प्रजा हैं। प्रजाके नाते सब राजाके भक्त हैं। राजा बड़ा सदाचारी है, बड़ा शिष्ट पुरुष है, प्रजापालक है। वह हर प्रकारसे श्रद्धाके योग्य है। प्रजाके नाते सब उसकी

भक्ति करते हैं। सबका एक-सा दर्जा है। अब कल्पना कीजिये, उसी प्रजामेंसे किसी एकको राजाने महलमें नौकर रख लिया। राजाका वह व्यक्तिगत नौकर हो गया। राजदरबारके नाते जैसे और प्रजा है, वैसा वह है ही। उसके कारण वह राजाका प्रिय पात्र है ही। उसके नाते राजा उसका पालन करते ही हैं। उसके नाते राजाके लिये नियम उसको मालूम हैं ही, परंतु जब वह अन्तरंग दास हो गया, तब महलमें गया। राजदरबारमें बैठना और महलमें बैठना अलग-अलग बात है। वहाँ कपड़े भी उतारते हैं और कहते हैं जरा, हाथ धुलाओ मगर दरबारमें यह बात नहीं कहते हैं। नौकरसे बार-बार अपने मनकी बात कहते हैं और पाससे आज्ञा देते हैं कि यह कार्य करो। जो प्रजाजनमें था, वह अब निजी दास हो गया तो और उनके समीप आ गया न। उसके सामने वह बात राजा कह देते हैं, जो उनकी अपनी व्यक्तिगत चाह होती है। जिसे दरबारमें नहीं कह सकते। यह स्वाभाविक बात है। इसलिये वह और अन्तरंग हुआ और उसे मनकी बात मालूम हुई।

भगवान्‌ने कहा—जब मुझमें पराभक्ति होती है तब उस भक्तिके द्वारा मैं कैसा हूँ, क्या हूँ—यह सब जानते हैं। आदिपुराणमें भगवान्‌ने कहा कि मेरी महिमा क्या है, मेरी पूजा कैसे होती है, मुझमें श्रद्धा कैसे की जाती है और मेरे मनमें क्या है, यह साधारणत: सब जानते हैं, परंतु तत्त्वत: नहीं जानते हैं। तत्त्वत: तो वह जानता है, जिसका मेरे मनमें प्रवेश है। जो मेरे मनको जान गया है। जो मेरे अन्तरंग स्वभावसे परिचित है। जो मेरी वास्तविक महिमासे परिचित है, वह तत्त्वत: जानता है। तब वहाँपर कहा भगवान्‌ने—मेरी महिमाको, मेरी पूजाको, मेरी श्रद्धाको और मेरे मनकी बातको तत्त्वत: केवल गोपियाँ जानती हैं और कोई नहीं जानता है।

मन्माहात्म्यं मत्सपर्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतम्।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ नान्ये जानन्ति तत्त्वतः॥

गोपियाँ क्यों जानती हैं? क्योंकि अत्यन्त अन्तरंगतामें आनेपर जब दिलमें यह आ जाता है कि मैं इसका हूँ यह मेरा है। कहीं धोखेकी सम्भावना नहीं, कहीं किसी प्रकारके परायेपनकी सम्भावना नहीं, कहीं किसी प्रकारका कुछ लेने-देनेका व्यवहार नहीं, बिलकुल अपनापन होता है। अपनेके सामने ही हृदय खुलता है। इसलिये जब हम भगवान्‌के अपने हो जायँगे, तब क्या होगा कि हमारे सामने भगवान्‌का हृदय खुल जायगा। उस समय हम जान सकेंगे। भगवान्‌की आज्ञाकी आवश्यकता नहीं होगी। उस समय हम जान सकेंगे कि भगवान् क्या चाहते हैं? उस समय हमें पता लगेगा कि इस समय इनके मनमें क्या है? रुचि तो जान ली जाती है बार-बार देखनेपर और रुचिसे आगेकी जो चीज है—मनोगत भाव। रुचि एक चीज है, परंतु इस समय हमारे मनमें क्या है, यह दूसरी चीज है। हमारा मन कब किस प्रकारका है, इस बातको वह जानता है, जिसका हमारे मनमें प्रवेश है। यह कल्पनाकी बात नहीं है। इसे आप घरमें करके देख लीजिये। जिसके साथ आप अन्तरंगता करेंगे और वह जान जायगा कि सच्ची अन्तरंगता है तो उसके हृदयकी बात आपको मालूम होने लगेगी। एक प्रकारका स्वाभाविक मनोवैज्ञानिक प्रभाव होगा कि उसकी बात आपके हृदयमें आने लगेगी। वह क्या सोचता है, उसे आप सोचने लगेंगे। वह क्या देखता है, उसे आप देखेंगे। वह क्या चाहता है, उसे आप चाहने लगेंगे। इस तरहसे होनेके बाद भगवान्‌के मनकी बात आपके मनमें आने लगेगी।

रटत रटत रसना लटी तृषा सूखि गे अंग। तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रंग॥

अपने प्यारे मेघका नाम रटते-रटते चातककी जीभ लट गयी और प्यासके मारे सब अंग सूख गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि तो भी चातकके प्रेमका रंग तो नित्य नया और सुन्दर ही होता जाता है। [दोहावली]

पवित्र जीवनका साधन

(पं० श्रीकृष्णदत्तजी भट्ट)

विचारोंकी पवित्रता

मालिक तेरी रजा रहे और तू ही तू रहे,
बाकी न मैं रहूँ न मेरी आरजू रहे।
जब तक कि तनमें जान रगोंमें लहू रहे,
तेरा ही जिक्र हो औ तेरी जुस्तजू रहे॥

हमारा कर्तव्य है कि हम प्रत्येक कार्यको प्रभुकी इच्छा समझकर करें। इस प्रकारकी भावना करते-करते हम देखेंगे कि हमारा सारा जीवन प्रभुसेवामय हो रहा है। इस भावनासे हमारे सारे कार्य पवित्र होते जायँगे, जिसकी कि बहुत बड़ी आवश्यकता है। यदि हमारे भीतर यह भावना न आयी तो हमारी प्रार्थनाका भी कुछ विशेष अर्थ न निकलेगा। जो व्यक्ति केवल प्रशंसा खरीदनेके लिये ही प्रार्थनामें सम्मिलित होता है या दान देता है, उसमें हम देखेंगे कि यह भावना उसके भीतरसे तिरोहित हो रही है। उसके सारे कार्य प्राय: दम्भ और पाखण्डसे आच्छादित हो जायँगे और जहाँ पाखण्ड होगा वहाँसे वास्तविकता कितनी दूर होगी, यह सभी जानते हैं। जहाँ प्रभुकी इच्छाको कारण समझा जायगा तथा उसीके निमित्त सारे कार्य किये जायँगे, वहाँके आनन्दका तो कहना ही क्या? मालिककी मर्जीको अपनी मर्जी बना लेनेवाले सत्पुरुष धन्य हैं, उनके सौभाग्यका क्या कहना? आह, कितना सुन्दर होगा वह दिन, जिस दिन हमारी भावनाएँ ऐसी हो जायँगी।

पशु किसी कार्यके परिणामको नहीं जानते, मनुष्य जान लेता है। मनुष्य और पशुमें यही तो मुख्य भेद है। जो मनुष्य शुभ परिणामवाले कार्य करता है, उसे सत्पुरुष कहा जाता है। विपरीत करनेवालेको असत्-पुरुष। भले और बुरे मनुष्यमें केवल यही अन्तर है। दो व्यक्ति प्रार्थना करते हैं। एकको उससे शान्ति प्राप्त होती है, दूसरेको उससे कुछ लाभ नहीं होता! क्यों? कारण केवल यही है कि एक सच्चे दिलसे प्रार्थना करता है दूसरा केवल दिखाऊ। एककी प्रार्थनामें उसकी सारी इच्छाओंका, सारी भावनाओंका, सारे प्रेमका अवलम्बन होता है—वह मंगलमय प्रभु। दूसरेका कुछ नहीं, वह केवल मुखसे प्रार्थनाके शब्दोंका उच्चारणमात्र करता है। उसका मन न जाने कहाँके सैर-सपाटे किया करता है, उसकी भावनाएँ न जाने कहाँ चक्कर काटा करती हैं। उसकी प्रार्थनामें कोई दिलचस्पी नहीं, वह तो सिर्फ बड़ाई पानेके लिये ही सब कुछ करता है। फिर यदि उसे प्रार्थनासे कुछ भी लाभ नहीं होता तो इसमें आश्चर्यकी बात ही क्या है? नाटकके पात्रोंके झूठे आँसुओंसे भी कहीं वस्तुत: हमारा हृदय द्रवित हुआ करता है? हम जानते हैं कि वे कल्पित हैं, अत: उनका कुछ भी मूल्य नहीं है। वास्तविकताकी तो कुछ और ही बात है। कबीरदासजी कहते हैं कि—

काँकर पाथर जोरिके मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

सच है प्यारे! वह तो चींटीकी भी पुकार सुनता है। चिल्लानेकी जरूरत ही क्या है? भला ऐसा भी कहीं हो सकता है कि तुम सच्चे दिलसे उसे पुकारो और वह न सुने? क्यों न सुनेगा, अवश्य सुनेगा। घबड़ानेकी बात नहीं। विश्वास और श्रद्धाकी आवश्यकता है। प्रेमका वार कभी खाली नहीं जाता।

असर सोजे मुहब्बतमें न हो यह गैर मुमकिन है।
शमाका जिस्म घुल जाता है गर परवाना जलता है॥
शमा जलती है पहिले फिर फिदा होता है परवाना,
यह दोनों बेधड़क जलते हैं उल्फतका असर देखो॥

पर उस सर्वान्तर्यामीके दरबारमें ढोंगके लिये स्थान नहीं है। वहाँ तो सच्चे आँसू चाहिये। दिखाऊ नहीं। सच्चे प्रेमियोंके चरणोंकी धूलि लेनेके लिये वह स्वयं लालायित रहता है। तभी तो यह हो नहीं सकता कि तुम उसे सच्चे दिलसे पुकारो और वह तुम्हारी आवाजपर ध्यान न दे। तुम्हारी पुकार पहुँचनेभरकी देर है, वह तो दस्तबस्ता तुम्हारी खिदमतमें आकर हाजिर हो जायगा।

कोई व्यक्ति बीमार पड़ा है, एक व्यक्ति सेवाके दृष्टिकोणसे जाकर उसकी सेवा करता है। दूसरा किसी

लाभकी आशासे या दिखाऊ सेवा करता है। सेवा दोनों करते हैं, पर दोनोंकी सेवाओंमें कितना अधिक अन्तर है? जमीन और आसमानका। एककी सेवा वास्तविक सेवा कही जायगी। दूसरेकी वास्तविक नहीं। ऊँची और नीची भावनाओंका अन्तर ऐसा ही होता है।

× × × ×

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सबग्रंथन्हि गावा॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक सँवारा॥
सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

—तुलसी

इस मानवतनको पाकर भी यदि हमने इसे व्यर्थमें ही खो दिया तो इसे प्राप्त करनेसे लाभ ही क्या रहा? इस शरीरको रत्नचिन्तामणि कहा जाता है; क्योंकि इसी देहद्वारा हम अपने सर्वोच्च लक्ष्य प्रभुसाक्षात्कारतक पहुँच सकते हैं।

नरतन सम नहिं कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत तेही॥

यदि यह अमूल्य तन और जीवन हमने कौड़ी-मोल लुटा दिया तो फिर हमारे समान अभागा और कौन होगा?

कोई भी बुद्धिमान् व्यक्ति न चाहेगा कि ऐसे अमूल्य जीवनको सांसारिक प्रपंचों, विषयभोगोंमें बिताकर इसे व्यर्थ खो दिया जाय। इसलिये यह परमावश्यक है कि इसके एक-एक क्षणका हम सदुपयोग करें। पापोंसे सर्वथा दूर रहें। सन्मार्गपर चलें और सदैव अपना जीवन पवित्रतापूर्वक बितायें। इसके लिये पवित्र विचारोंकी अत्यधिक आवश्यकता है। हमारे विचार जैसे होते हैं—हम भी वैसे ही बन जाते हैं। यदि हमारे विचार पवित्र होंगे तो फिर हमारे पवित्र होनेमें कोई सन्देह नहीं। जब कोई पापवासना हमारे मस्तिष्कमें आयेगी ही नहीं फिर उसके चरितार्थ होनेकी बात ही क्या? अत: मनुष्यके वास्तविक कल्याणके लिये पवित्र विचारोंकी उतनी ही आवश्यकता है जितनी शरीरके लिये आत्माकी, वृक्षके लिये जड़की, संसारके लिये सूर्यकी, नदीके लिये जलकी और मकानके लिये नींवकी होती है। जिस व्यक्तिके विचार पवित्र नहीं होते, उसके सारे कार्य अनावश्यक व्यर्थ और पापोंसे पूर्ण हुआ करते हैं। विचारोंके अनुकूल ही कार्य होते हैं और कार्यके अनुसार ही फल मिलता है। बुरे कार्यका फल बुरा होगा ही और अच्छेका अच्छा। इस नियमका व्यतिक्रम हो नहीं सकता। ***'बोया पेड़ बबूलका आम कहाँ ते होय?'*** विचारों, कार्यों और फलोंका बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमें विचारोंका स्थान सर्वोपरि है। अत: यदि हम चाहें कि हमारे कार्योंका परिणाम शुभ हो तो सबसे पहले हमारा कर्तव्य है कि हम अपने विचार अच्छे बनायें। विचारोंको पवित्र बनाना अत्यावश्यक है।

विचारोंको पवित्र बनानेके उपाय

१-बिना विचारे जो करै, सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जगमें होय हँसाय॥

—गिरिधर कविराय

किसी भी कार्यको करनेके पूर्व उसके परिणामको भलीभाँति सोच लो। इस बातपर खूब विचार कर लो कि तुम उस कार्यको क्यों कर रहे हो। उसका शुभ परिणाम प्राप्त करनेके लिये तुमने जो उपाय सोच रखे हैं, वे कहाँतक ठीक हैं? ठीक भी हैं अथवा नहीं? उसके परिणाममें वास्तवमें तुम्हारा हित होगा या नहीं। इन सब बातोंपर खूब गम्भीरतासे विचार करो। बिना विचारे कोई काम मत करो। अन्यथा यह निश्चय समझो कि अन्तमें तुम्हें पछताना पड़ेगा।

२-किसी भी कार्यके प्रारम्भमें उस मंगलमय प्रभुका स्मरण अवश्य करो। इससे एक तो यह होगा कि हम कोई भी कार्य उस प्रभुकी आज्ञा बिना न करेंगे, दूसरे प्रभु-इच्छाको हम उस विषयमें विशेष महत्त्व प्रदान करेंगे। उसके परिणामको प्रभुकी इच्छापर छोड़ देंगे। इस प्रकार निष्काम कर्म और कर्मफलत्याग सीखेंगे। तीसरे, ऐसा कार्य जिसमें हम प्रभुको सम्मुख रखेंगे, शुभ होगा ही—क्योंकि किसी भी अशुभ या अपवित्र कार्यको प्रारम्भ करते समय हम उस सर्वशक्तिमान् परमपिता परमेश्वरका नाम लेनेमें हिचकते हैं। उसके लिये हमारी अन्तरात्मा हमें रोकती है। इसीलिये अमंगल-कर्मोंमें प्रभु हमारा साथ नहीं देते। जब हम इस प्रकारका कोई कार्य करने जाते हैं तो हमें बड़ी लज्जा प्रतीत होती है, झिझक

मालूम होती है। यदि उस समय कोई उस पवित्र न्यायकारी भगवान्‌का नाम ले लेता है तो हम काँप उठते हैं और यदि उस समय कोई यह कह बैठे कि 'तुम ऐसा कार्य कर रहे हो, तुम्हें ईश्वरका डर नहीं है?' तो हमारे रोंगटे सतर हो जाते हैं। इसीलिये हम उस समय उस प्रभुका नाम लेना नहीं चाहते। जिस कार्यके प्रारम्भमें हमें भगवान्‌का नाम लेनेमें झिझक मालूम पड़े उसे तुरंत छोड़ देना चाहिये, वह कार्य पवित्र नहीं है। शुभ कार्योंमें हमारा हृदय सदैव निर्भय रहता है अत: हम बिना झिझके उस दयालु परमेश्वरसे उसके लिये प्रार्थना करते हैं। हमें उस कार्यमें उसके आशीर्वादकी पूर्ण आशा रहती है और उसकी कृपापर पूर्ण और दृढ़ विश्वास रखनेसे हम देखते हैं कि हमें निराश नहीं होना पड़ता। उसपर दृढ़ विश्वास रखो। बिना विश्वासके कुछ न होगा।

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

—तुलसीदास

३-प्रत्येक कार्यको प्रारम्भ करते समय उस मंगलमय भगवान्‌की सच्चे दिलसे प्रार्थना करो, जिसके फलस्वरूप वह तुम्हें उसकी पूर्तिके लिये केवल आशीर्वाद देकर ही न रह जाय प्रत्युत तुम्हारे कार्यको पूर्णतया पवित्र भी बना दे। यदि उसके पवित्र होनेमें कुछ भी कमी हो तो वह उस कमीको पूर्णतया निकाल दे। तुम्हारे विचारों, तुम्हारी भावनाओं और तुम्हारे कार्यों—सभीको पवित्रताकी ओर ले जाय। ऐसी प्रार्थनाके साथ-ही-साथ एक कार्य और भी करो। प्रत्येक कार्य प्रभुको समर्पण कर दो।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये।

इस बातका सदैव स्मरण रखो कि पवित्र और सदिच्छाओंके साथ जो कार्य किये जाते हैं—मालिककी भेंट करनेके लिये वे ही सर्वोत्तम होते हैं। उस परमब्रह्म परमेश्वरको—जो कि पवित्रसे भी पवित्र है, भला कोई मलिन वस्तु किस प्रकार भेंट की जा सकती है? उसके मन्दिरमें तो केवल पवित्र वस्तु ही चढ़ायी जा सकती है। उसके लिये तो शुद्ध ही भेंट चाहिये।

जब हम किसी वस्तुका किसीको समर्पण कर चुकते हैं तो फिर उस व्यक्तिका कर्तव्य हो जाता है कि वह उस वस्तुका संरक्षण करे। समर्पण करनेवाला तो अपना काम कर चुका। अब वह उसकी रक्षाका जिम्मेवार नहीं। तुम भी जब अपने कार्यको उस मालिककी खिदमतमें पेश कर दोगे तो फिर तुम अपने हकसे बरी हो जाओगे। फिर यह उस मालिकका कर्तव्य होगा कि उस कार्यको अन्ततक पहुँचाये। लेकिन वह उसे अन्ततक पहुँचाये अथवा न पहुँचाये, तुम्हें इससे क्या? तुम तो अपना कर्तव्य कर चुके। तुम तो अपने फर्जसे अदा हो चुके। अब यह उसकी मर्जीकी बात कि चाहे जो कुछ करे। तुम्हें उसके लिये प्रसन्न अथवा दु:खित होनेकी आवश्यकता नहीं, जिसका काम है वही जाने, तुम्हें क्या—

जाही विधि राखे राम ताही विधि रहिये।

४-कार्य करते-करते बीच-बीचमें समय मिलते ही अपनी प्रार्थनाको दुहराते रहो। इसका खूब स्मरण रखो। करते-करते कहीं यह न सोचने लग जाना कि इसका कर्ता मैं हूँ। तुम अब उसके कर्ता थोड़े ही हो। अब तो वह दयालु परमेश्वर उसका कर्ता है। तुम तो केवल निमित्तमात्र हो। सच्चे सेवककी भाँति पूरी लगनके साथ दृढ़चित्तसे उसमें लगे रहो। उसीकी मर्जीको अपनी मर्जी बना लो। उससे दिल खोलकर कह दो कि—

'राजी हैं हम उसीमें जिसमें तेरी रजा है।'

प्यारे! सेवककी अपनी इच्छा ही क्या? उसे तो अपनी सारी इच्छाओं, सारी कामनाओंका दमन करना पड़ेगा। मालिककी खिदमतके लिये अपनी हस्तीको ही मिटा देना पड़ेगा, क्योंकि—

है गुमराह जिस दिलमें बाकी खुदी है,
मिला तुझसे जिसने खुदीको गँवाया॥

खुदी-अहंकार-अभिमान आदिके हृदयमें रहते हुए भी कहीं सच्चे दिलसे काम हो सकता है? अत: प्यारे कल्याणमार्गके पथिको! इस 'मैं'पनके अहंकारको हृदयसे निकाल फेंको। खुदीको जला डालो, सफलताकी यही कुंजी है।

मुनव्वर अंजुमन होता है महफिल गर्म होती है।
मगर कब? जब कि खुद जलता है शमा-ए-अंजुमन पहिले॥

अत:—

अगर है शौक मिलनेका तो हरदम लौ लगाता जा।
जलाकर खुदनुमाईको भसम तनपर रमाता जा॥
पकड़कर इश्ककी झाड़ू सफा कर हिज्र-ए दिलको।
दुईकी धूलको लेकर मुसल्लेपर उड़ाता जा॥

यदि तुम्हें सफलता प्राप्त करनेकी इच्छा है तो अपने आपको भूल जाओ। अपने कर्तापनके अहंकारको मिटा डालो। जिस काममें लगो, उसीमें अपने अस्तित्वको डुबा दो। कर्ता और कार्यमें कुछ भी भेद न रहे। सफलता पानेकी इच्छातकको काम करते-करते भूल जाओ। देखोगे सफलता तुम्हारे पास आये बिना रह नहीं सकती।

प्यारे! खुदीको मिटा दो, खुदा मिल जायगा।

५-कार्यके बीचमें यह मत भूल जाओ कि तुम इस कार्यको प्रभुको समर्पण कर चुके हो। इस प्रकार यदि कहीं पथसे विचलित हो गये तो बड़ा बुरा होगा। आत्मप्रशंसा, क्षणिक सुख अथवा किसी पापमें जाकर आबद्ध हो जाओगे। ***'आये थे हरिभजनको, ओटन लगे कपास'*** वाला हाल हो जायगा। इस प्रकारसे पथभ्रष्ट होनेका परिणाम कितना भयंकर होगा, सोचनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ेगा। जैसे—तुम किसी स्त्रीको ब्रह्मचर्यपालनका उपदेश दे रहे हो और इसके लिये तुम एक अत्यन्त सुन्दर दृष्टान्त उसे सुना रहे हो, जिसमें अब्रह्मचर्यसे रहने अथवा व्यभिचार करनेके भयानक परिणाम और उसकी निस्सारताका बड़ा सुन्दर वर्णन है—पर मान लो तुम्हारे श्रोता तुम्हारी कथा कहनेकी सुन्दर शैलीपर मोहित हो जाते हैं और जिसके फलस्वरूप वह तुम्हें चाहने लगते हैं और कथाके सार—पापसे घृणा करने, व्यभिचारसे बचनेकी ओर उनका मन ही नहीं जाता! जरा सोचो तो कि इसका परिणाम कितना भयंकर होगा? कल्याणमार्गमें इस प्रकारकी अनेकों बाधाएँ आयेंगी। ध्यान रखना कहीं वे तुम्हें पथसे विचलित न कर दें। इस विषयमें खूब सतर्क रहना आवश्यक है। देखना अपना लक्ष्य न भूल जाना। तुम्हें अपने मंजिले-मकसूदपर पहुँचना है। वहाँ पहुँच करके ही विश्राम लेना।

६-कार्य करते-करते बीचमें यदि कोई आकस्मिक घटना हो जाय, जिससे तुम्हें कुछ लाभ प्राप्त होनेकी आशा हो तो उससे कुछ भी लाभ उठानेका प्रयत्न न करो। मान लो तुम किसी सत्य घटना अथवा कथाका वर्णन कर रहे हो, अकस्मात् उसमें तुम्हारे किसी शत्रुकी बात आ जाती है—यद्यपि कथा प्रारम्भ करनेके पूर्व उसका वर्णन लानेकी तुम्हारी लेशमात्र भी इच्छा न थी। उसके वर्णन करनेसे तुम्हारे शत्रुका अनिष्ट हो सकता है, उसकी हानि हो सकती है, उसे दण्ड मिल सकता है (सांसारिक दृष्टिसे यह तुम्हारे हितकी बात है) किंतु तुम कभी भी ऐसा मत करो। यदि कभी ऐसा कोई प्रलोभन तुम्हारे मार्गमें आ जाय तो भूल करके भी उसके वशीभूत न हो जाओ। प्रलोभन तुम्हारा सर्वनाश ही करेंगे। उनके वशमें हो जानेसे तुम्हारा कोई भी वास्तविक लाभ न होगा। उनपर विजय प्राप्त करो।

७-धर्मके प्रत्येक कार्यमें उसके सारे सहायक साधनोंको भी सम्मिलित कर लो। इससे आवश्यकता पड़नेपर मान लो तुम्हें एकाध साधन छोड़ना पड़ा तो दूसरे सहायक साधन तुम्हें कर्तव्यपथपर दृढ़ बनाये रखेंगे। उससे तुम्हारी कुछ विशेष हानि न होगी। जिस प्रकार कोई व्यक्ति शरीरपर विजय प्राप्त करनेके हेतु उपवास करता है, जिस समय वह बीमार पड़ जाता है अथवा कमजोर हो जाता है और उसे दवा खानेका आदेश मिलता है तो वह शरीरपर दयास्वरूप अथवा अपने स्वभावके कारण उपवास तोड़नेके लिये प्रलोभित हो सकता है। उसका सारा नियन्त्रण बेकार हो जाता है, परंतु जो व्यक्ति अपने उपवासमें केवल आहारकी राजसिकता और तामसिकतापर ही नियन्त्रण नहीं रखता प्रत्युत उसके साथ ही सांसारिक तमाम भोगोंसे विरक्तिका अभ्यास करता है, मनके रहस्योंकी खोज-बीनकर उनपर नियन्त्रण रखता है, नम्रता, दयालुता, दान, प्रभु-प्रार्थना आदि-आदि तमाम साधन साथ-ही-साथ करता रहता है—उपवास तोड़नेके लिये बाध्य होनेपर भी उसकी कुछ विशेष हानि नहीं होती। वह उपवास तोड़ देनेपर भी अपने स्वादपर विजय प्राप्त करनेका अभ्यास करता रहता है, साथ ही अन्य सब साधनोंका भी पूर्ववत् अभ्यास करता रहता है। अतः लक्ष्यतक पहुँचनेके लिये जितने अधिक साधन साथ-साथ चला सको, चलाते रहो।

८-जो वस्तु जितनी अधिक मूल्यवान् होती है,

उसके लिये उतना ही अधिक त्याग करना पड़ता है, उतना ही अधिक मूल्य चुकाना पड़ता है। मिट्टीका एक साधारण घड़ा बहुत ही मामूली चीज है। अत: वह हमें एक-दो पैसेमें मिल जाता है किंतु यदि हम उसी तरह एक हीरेका मूल्य आँकने बैठें तो फिर हो चुका! मिट्टीके घड़ेकी अपेक्षा एक हीरेका मूल्य लाखों गुना अधिक है। उसके लिये यदि हजारों रुपये हमें देने पड़ें तो फिर इसमें आश्चर्यकी क्या बात है। जो स्थान जितना अधिक दूर होता है उसमें उतने ही अधिक कण्टकोंके आनेकी सम्भावना रहती है। सारे जगत्‌के स्वामी, राजाओंके भी राजा, सर्वशक्तिमान् परमब्रह्म परमेश्वरका भला कौन मूल्य आँक सकता है? ऐसी अमूल्य वस्तुके लिये हमें यदि अत्यधिक त्याग करना पड़े, अनेकों कष्ट उठाने पड़ें, बहुत-से दु:ख सहन करने पड़ें तो इसमें आश्चर्य ही क्या? प्रभु-जैसी अमूल्य वस्तुके मार्गमें सांसारिक प्रलोभन, दु:ख, कष्ट आदि बहुत-सी बाधाएँ आती हैं। यदि हमें उसतक पहुँचना है तो हमें हँसते-हँसते इन सबका सामना करना पड़ेगा। कोई भी प्रलोभन, कोई भी बाधा, कोई भी संकट जब हमें विचलित न कर सकेगा तभी हम अपने लक्ष्यतक पहुँच सकेंगे। कितना सत्य निहित है श्रीभूपेन्द्रनाथ सान्यालके इन शब्दोंमें—

मिलनेको प्रियतमसे जिसके प्राण कर रहे हाहाकार।
गिनता नहीं मार्गकी कुछ भी दूरीको वह किसी प्रकार॥
नहीं ताकता किंचित भी शत शत बाधा-विघ्नोंकी ओर।
दौड़ छूटता जहाँ बजाते मधुर बंसरी नन्दकिशोर॥
मिली हुई जो कभी भाग्यवश उसको हैं आँखें होतीं।
वही जानता कीमत जो उस रूपमाधुरीकी होती॥
कुछ भी कीमत हो, परंतु है रूपरसिक जो जन होता।
दौड़ पहुँचता लेनेको तत्काल, नहीं पलभर खोता॥

प्यारे! तुझे उस अलबेले यारके दरवाजेतक पहुँचना है। अपनी राहपर तेजीसे चलता चला जा। विघ्न-बाधाओंकी परवा ही न कर।

९-कार्य चाहे छोटा हो चाहे बड़ा उसके निमित्त सच्चे हृदयसे पूर्ण विश्वासके साथ प्रार्थना करनी चाहिये। देखोगे, तुम्हें सफलता मिलेगी। प्रार्थना निष्फल नहीं जाती। प्रभु शरणागतवत्सल हैं, बड़े ही दयालु हैं, कृपालु हैं, न्यायकारी हैं, उनके दरबारमें अन्यायके लिये स्थान ही नहीं है। शुभ कार्योंके हेतु सच्चे दिलसे की गयी प्रार्थना अवश्य सफल होती है, यह दृढ़ विश्वास रखो। यह प्रार्थना और प्रभुपर विश्वास—तुम्हारे विचारोंको शोधकर पूर्णतया पवित्र बना देगा।

१०-जो धन, जो समय हमें ईश्वरसेवार्थ प्राप्त हुआ है, उसे उसीमें लगाना हमारा कर्तव्य है। अन्यथा करनेसे हम कर्तव्यच्युत होते हैं। कर्तव्यच्युत होना मनुष्यके लिये बड़ी लज्जाकी बात है। हम यदि ध्यानपूर्वक विचार करें कि हम इस प्रकारके कार्य कब करते हैं तो स्पष्ट पता चल जायगा कि जब हम किसी वासना—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य आदिके वशीभूत हो जाते हैं और अपने मनको काबूमें नहीं रख पाते हैं तभी हम इस प्रकारके कार्य करते हैं। प्यारे! हमारे भीतर जबतक इस प्रकारकी गन्दगियाँ भरी रहेंगी तबतक न तो हम पवित्र हो सकेंगे, न हमारे कार्य पवित्र हो सकेंगे और न हमारे विचार पवित्र हो सकेंगे! किसी भी कल्याणकामीका बिना इन्हें जीते काम नहीं चल सकता। इनपर विजय प्राप्त कर लेना यद्यपि सहज नहीं है तो भी अभ्यास करते-करते क्या नहीं हो जाता?

करत करत अभ्यासके जडमति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिलपर होत निसान॥

गीतामें भी श्रीभगवान् कहते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

(६। ३५)

सांसारिक सारे प्रलोभनों, सारी कामनाओं, वासनाओं, भोगों आदिसे सर्वरूपेण विरक्ति और भगवत्-प्रेममें सदैव निमग्न रहनेका सदैव अभ्यास करते रहो, बस, देखोगे कि हमारे विचार स्वयमेव पवित्र होते जा रहे हैं, कामनाओंका अन्त होता जा रहा है, मन काबूमें आता जा रहा है, उस सच्चिदानन्दके श्रीचरणोंमें दिन-प्रति-दिन नित नूतन प्रेम बढ़ता जा रहा है। विचारोंको पवित्र रखनेका यह सर्वोत्तम साधन है।

साधकोंके प्रति—

[भगवान्‌का भजन करनेमें ही कल्याण है]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

[गताङ्क ७ पृ०-सं० १७ से आगे]

भाइयो-बहनो! मनुष्य-शरीर मिला है तो बड़ा सुन्दर मौका मिला है। भगवान्‌का भजन करो और दुनियाकी सेवा करो। अपने पासमें धन हो तो धनसे सेवा करो, सामर्थ्य हो तो शरीरसे सेवा करो, नहीं तो मनसे ही सबका भला चाहो। सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सबका कल्याण हो जाय—ऐसा भाव रखो तो मुफ्तमें ही आपका पुण्य हो जायगा। जितना कर सको, उतना करके पुण्य कर लो, जितना दे सको, उतना देकर पुण्य कर लो और यह न कर सको तो भाव शुद्ध बना लो। भाव शुद्ध बनानेसे आपका अन्तःकरण निर्मल हो जायगा, भगवान्‌की बड़ी कृपा हो जायगी, जीवन शुद्ध हो जायगा। जितने भी अच्छे-अच्छे महात्मा हुए हैं, उनके भाव शुद्ध थे। उनके भाव दूसरोंका उपकार करनेके थे। हमारी बहनें भी यदि चाहें तो भाव शुद्ध बनाकर मीराबाई बन सकती हैं, फूलीबाई बन सकती हैं, करमाबाई बन सकती हैं, करमैतीबाई बन सकती हैं। उनकी इतनी महिमा क्यों है? कि वे भगवान्‌में लग गयीं, भजनमें लग गयीं। फूलीबाई जाटनी थी, पढ़ी-लिखी कुछ नहीं थी। गोबर थाप रही थी। उसमें दूसरी कहती है कि यह थेपड़ी मेरी है और यह कहती है तेरी नहीं, मेरी है। इसकी पहचान क्या है? इसे उठाकर कानमें लगाओ, यदि भगवान्‌का नाम सुनायी देता है, तब तो मेरी, नहीं तो तेरी। पंढरपुरमें एक भक्त हुए। उनका नाम था चोखामेला। भगवान्‌का भजन करते थे, विट्ठल-विट्ठल जपते थे। मंगलबेड़ा गाँवमें एक मकान बन रहा था। उसमें ये काम कर रहे थे। अचानक मकानके गिर जानेसे ये दबकर मर गये। मकानका मलबा हटानेमें कई दिन लग गये। जब उसमेंसे शव निकाले गये तो यह पहचानमें नहीं आया कि चोखामेलाका शरीर कौन-सा है। चेहरा दीखे, तब तो पहचान लें, पर वहाँ तो हड्डियाँ दीख रही थीं। नामदेवजी महाराजसे पूछा गया कि चोखामेला मर गया है, उसके शवकी पहचान कैसे हो? तो उन्होंने कहा कि उसकी पहचान सीधी है। हड्डियोंको कानमें लगाओ, जिस हड्डीसे विट्ठल-विट्ठल आवाज आयेगी, वह चोखामेलाकी है। आज ख्याल करो, कितनी विचित्र बात है। उनकी हड्डियोंमें नामजपका असर हो गया, विलक्षणता आ गयी।

जिस स्थानपर संत-महात्माओंकी दाह-क्रिया की जाय, वहाँ जाकर बैठो तो भगवान्‌में मन लग जायगा और श्मशानमें जाकर बैठो तो हृदयमें हलचल मच जायगी, शान्ति नहीं मिलेगी, मरनेके बाद भी दोनोंमें फर्क रहता है। कोई साधारण आदमी मर जाय तो उसकी कोई चीज नहीं लेते कि यह मुर्देके चीज है, परंतु कोई संत चला जाय तो उसकी चीज माँगकर लेते हैं कि उसको हम पूजामें रखेंगे। उनकी चीज पवित्र होती है। क्यों पवित्र होती है? कि उनमें ममता नहीं होती। जिस चीजमें मनुष्यकी ममता होती है, वह चीज अपवित्र हो जाती है। संत-महात्माओंमें ममता नहीं होती, इसलिये उनकी चीज पवित्र होती है, उनका चरित्र पवित्र होता है, उनके दर्शन पवित्र होते हैं, उनकी यादगिरी पवित्र होती है। भागवतमें आया है कि संतोंको याद करनेसे घर तत्काल पवित्र हो जाते हैं—'**येषां संस्मरणात् पुंसां सद्यः शुद्ध्यन्ति वै गृहाः**' (१।१९।३३)। क्यों पवित्र हो जाते हैं? कि वे भगवान्‌का भजन करते हैं। युद्धके समय विदुरजी तीर्थयात्राके लिये चले गये थे। जब वे तीर्थयात्रा करके लौटे, तब युधिष्ठिरजी महाराजने कहा—

भवद्विधा भागवतास्तीर्थभूताः स्वयं विभो।
तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता॥

(श्रीमद्भा० १।१३।१०)

'आप-जैसे भगवान्‌के प्रिय भक्त स्वयं तीर्थस्वरूप होते हैं। आपलोग अपने हृदयमें विराजित भगवान्‌के प्रभावसे तीर्थोंको भी महातीर्थ (महान् पवित्र) बनाते हुए विचरण करते हैं।'

पापी लोग तीर्थोंमें अपने पाप छोड़ आते हैं। जब भक्तलोग वहाँ जाते हैं, स्नान करते हैं, तब उन तीर्थोंके पाप नष्ट हो जाते हैं और वे पवित्र हो जाते हैं। एक साधु थे। वे सभी साधुओंकी निन्दा किया करते थे कि इनका साधु बनना अवैध है, इनको साधु बननेकी शास्त्रकी आज्ञा नहीं है, आदि। अच्छे संत-महात्माओंकी, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुषोंकी निन्दा करनेसे उनको कोढ़ निकल आया। वे घबराये कि अब क्या करें? तब किसीने उनसे कहा कि तुमने अपनेको ऊँचे दर्जेका साधु समझकर सन्तोंकी निन्दा की है, तिरस्कार किया है, उसीका यह नतीजा है कि तुम्हें कोढ़ निकल आया। अब किसी अच्छे सन्तके पास जाओ और उनकी सेवा करो। पीलीभीत शहरके पासमें एक सन्त रहते थे। लोगोंने कहा कि तुम उन सन्तके पास जाओ, वे बड़े दयालु हैं और तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महापुरुष हैं। वे साधु वहाँ पहुँचे। रात हो गयी थी, महाराजकी कुटिया बन्द थी, अतः वे बाहर ही ठहर गये। रात्रिमें दो स्त्रियाँ वहाँ आयीं। महाराज जहाँ स्नान करते थे, वहाँ थोड़ा-सा जल इकट्ठा था। उन दोनों स्त्रियोंने वह जल अपने शरीरपर लगाया तो उनका कालापन मिट गया और वे रूपवती हो गयीं। साधुने उनसे पूछा कि तुम कौन हो? यहाँ कैसे आयी हो? तो उन्होंने कहा कि हम गंगा और यमुना हैं। पापियोंके पापसे हम अपवित्र हो गयी थीं। अब सन्तोंके चरणोंके जलसे हमारे पाप दूर हो गये, हम पवित्र हो गयीं। ऐसा सुनकर उस साधुने भी उस जलको अपने शरीरपर लगाया तो उनका कोढ़ दूर हो गया। उन्होंने '**उदासीन साधो नमस्ते नमस्ते**'—ऐसा स्तोत्र संस्कृतमें बनाया। भगवान्‌को याद करनेसे मनुष्य पवित्र हो जाता है और इसमें सब स्वतन्त्र हैं।

जाट भजो गूजर भजो, भावे भजो अहीर।
तुलसी रघुबर नाममें, सब काहू को सीर॥

भगवान्‌का नाम लेनेमें कौन मना कर सकता है? भाई हो, बहन हो, किसी जातिका, किसी वर्णका, किसी आश्रमका कोई क्यों न हो, भगवान्‌के भजनकी किसीको मनाही नहीं है। वेदादि पढ़नेमें, गायत्रीका जप करनेमें सबका अधिकार नहीं है, पर भगवान्‌के चरणोंकी शरण लेनेके सब अधिकारी हैं। हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, बौद्ध हो, जैन हो, यहूदी हो, पारसी हो, कोई क्यों न हो, वह भगवान्‌के चरणोंकी शरणमें जा सकता है। 'माँ' कहनेका सबको अधिकार है। सपूत-से-सपूत भी 'माँ' कह सकता है और कपूत-से-कपूत भी 'माँ' कह सकता है। कपूत हुआ तो क्या, पूत तो है ही। ऐसे ही रामजीका नाम लेनेके सब अधिकारी हैं। भगवान्‌को माँ कहनेके सब अधिकारी हैं—'**त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।**'

अपने पासमें अरबों-खरबों रुपये पड़े हों और इतना बड़ा राज्य हो, जिसमें सूर्यका अस्त भी न हो, पर मरनेके बाद वह क्या काम आयेगा?

अरब खरब लौं द्रव्य है उदय अस्त लौं राज।
तुलसी जो निज मरन है तो आवे किहि काज॥

परंतु भगवान्‌का भजन किया जाय तो वह साथमें जायगा। भजन करनेवालेको देखनेसे, उसका संग करनेसे, उसकी बातें सुननेसे शान्ति मिलती है।

भजन करे पातालमें, प्रगट होय आकाश।
दाबी दूर्वा ना रहे, कस्तूरी की बास॥

जिन लोगोंने भजन किया है, उनमें कितनी विलक्षणता आयी है। 'रामचन्द्रिका' की रचना करनेवाले केशव कविसे किसीने पूछा कि किसकी कविता बढ़िया है? तो बोले कि मेरी कविता बढ़िया है। उनसे फिर पूछा कि क्या गोस्वामीजी महाराजकी कविता बढ़िया नहीं है? वे बोले कि गोस्वामीजीकी कविता कविता नहीं है, वे तो वेदोंकी ऋचाएँ हैं, मन्त्र हैं। मैं तो कविकी बात कहता हूँ कि कवियोंमें मेरी कविता बढ़िया है। गोस्वामीजी महाराज कवि नहीं हैं, वे तो संत हैं।

कवियोंकी कवितामें सुन्दरता तो होती है, पर जीवोंका उद्धार करनेकी ताकत नहीं होती। सन्तोंकी वाणीमें उद्धार करनेकी ताकत होती है। सन्तोंकी वाणी विचित्र होती है, उनके दर्शन विचित्र होते हैं, उनका संग विचित्र होता है। क्यों विचित्र होता है? कि वे भगवान्‌में लगे हैं। माइकसे बोलनेमें कितना शब्द पैदा होता है; क्योंकि उसका सम्बन्ध बिजलीके साथ है। अगर तार काट दिया जाय तो क्या उसमें वह ताकत रहेगी? ऐसे ही भगवान्‌का सम्बन्ध होनेसे संत-महात्माओंमें बड़ी विचित्रता आ जाती है। वह विचित्रता अपने घरकी नहीं, भगवान्‌की है। भगवान्‌का सम्बन्ध टूट जाय तो जै रामजीकी। अर्जुनने महाभारत-युद्धमें विजय प्राप्त की थी, पर भगवान्‌के अपने धाममें पधारनेके बाद जब वे गोपिकाओंको लेकर जा रहे थे, तब लुटेरोंने गोपिकाओंको लूट लिया और अर्जुन कुछ नहीं कर सके। उनमें शक्ति भगवान्‌की ही थी। भगवान्‌की शक्तिके बिना वे क्या कर सकते थे? अगर आप भगवान्‌के भजनमें लग जाओ तो दूसरोंका कल्याण कर दो—इतनी शक्ति आपमें आ जाय।

फूलीबाई एक साधारण ग्रामीण जाटनी स्त्री थी। उसको जोधपुरके राजा अपने दरबारमें ले गये और कहा कि रानियोंको उपदेश करो। रानियाँ बढ़िया-बढ़िया शृंगार करके आसनोंपर बैठी थीं। फूलीबाई उनके पास आकर अपनी भाषामें बोली—‘***गहनो-गाँठो तनकी शोभा, काया काचो भाण्डो। फूली थाने यूँ कहे, थे राम भजो री राण्डो॥***’ अरी राण्डो! इस प्रकार बैठी कैसे हो, राम-राम करो। गहने तो शरीरकी शोभा हैं, आज मर जाओ तो वे क्या काम आयेंगे? शरीर तो कच्चा घड़ा है, न जाने कब फूट जाय। इस तरह अपनी भाषामें सीधी-सादी बात कह दी। उसकी बातसे रानियाँ नाराज नहीं हुईं। सब लोग फूलीबाईका आदर करते थे; क्योंकि उसके मनमें किसीसे कुछ लेनेकी इच्छा थी ही नहीं। ऐसे कई भक्त हमारे देशमें हुए हैं, साधारण जातिमें हुए हैं, ऊँची जातिमें हुए हैं, पढ़े-लिखे व्यक्तियोंमें हुए हैं, अपढ़ व्यक्तियोंमें हुए हैं। जो भी भगवान्‌की तरफ लगा, वह विलक्षण हो गया। मनुष्यपना इसीमें है कि भगवान्‌की तरफ जाय। [समाप्त]

भगवान् विष्णु किससे प्रसन्न रहते हैं

परापवादं पैशुन्यमनृतं च न भाषते। अन्योद्वेगकरं वापि तोष्यते तेन केशवः॥
परदारपरद्रव्यपरहिंसासु यो रतिम्। न करोति पुमान्भूप तोष्यते तेन केशवः॥
न ताडयति नो हन्ति प्राणिनोऽन्यांश्च देहिनः। यो मनुष्यो मनुष्येन्द्र तोष्यते तेन केशवः॥
देवद्विजगुरूणां च शुश्रूषासु सदोद्यतः। तोष्यते तेन गोविन्दः पुरुषेण नरेश्वर॥
यथात्मनि च पुत्रे च सर्वभूतेषु यस्तथा। हितकामो हरिस्तेन सर्वदा तोष्यते सुखम्॥
यस्य रागादिदोषेण न दुष्टं नृप मानसम्। विशुद्धचेतसा विष्णुस्तोष्यते तेन सर्वदा॥

[**महात्मा और्व राजा सगरसे कहते हैं**—हे राजेन्द्र!] जो पुरुष दूसरोंकी निन्दा, चुगली अथवा मिथ्याभाषण नहीं करता तथा ऐसा वचन भी नहीं बोलता जिससे दूसरोंको खेद हो, उससे निश्चय ही भगवान् केशव प्रसन्न रहते हैं। हे राजन्! जो पुरुष दूसरोंकी स्त्री, धन और हिंसामें रुचि नहीं करता, उससे सर्वदा ही भगवान् केशव सन्तुष्ट रहते हैं। हे नरेन्द्र! जो मनुष्य! किसी प्राणी अथवा [वृक्षादि] अन्य देहधारियोंको पीड़ित अथवा नष्ट नहीं करता, उससे श्रीकेशव सन्तुष्ट रहते हैं। जो पुरुष देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी सेवामें सदा तत्पर रहता है, हे नरेश्वर! उससे गोविन्द सदा प्रसन्न रहते हैं। जो व्यक्ति स्वयं अपने और अपने पुत्रोंके समान ही समस्त प्राणियोंका भी हित-चिन्तक होता है, वह सुगमतासे ही श्रीहरिको प्रसन्न कर लेता है। हे नृप! जिसका चित्त रागादि दोषोंसे दूषित नहीं है, उस विशुद्ध-चित्त पुरुषसे भगवान् विष्णु सदा सन्तुष्ट रहते हैं। [श्रीविष्णुपुराण]

भगवान् दक्षिणामूर्तिकी भद्रा मुद्रा

(श्रीजशवन्तराय जयशंकर हाथी)

श्रीआदिशंकराचार्य अपने 'दक्षिणामूर्तिस्तोत्रमें' गा रहे हैं—

बाल्यादिष्वपि जाग्रदादिषु तथा सर्वास्ववस्थाष्वपि
व्यावृत्तास्वनुवर्तमानमहमित्यन्तःस्फुरन्तं सदा।
स्वात्मानं प्रकटीकरोति भजतां यो मुद्रया भद्रया
तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इदं श्रीदक्षिणामूर्तये॥

श्रीभोलानाथ, आशुतोष भगवान् शंकरने दक्षिणामूर्ति-स्वरूप धारण किया, इस सम्बन्धमें कथा है—

भारतकी संस्कृतिका स्रोत बहानेवाले केन्द्रोंमें सर्वप्रधान श्रीनैमिषारण्यमें वर्षोंतक चलनेवाले सत्रयज्ञ हुआ करते थे। 'स्वाहा, स्वाहा'की ध्वनिके साथ-साथ इतिहास-पुराणकी पावन कथाओंके प्रसंग भी वहाँ चला करते थे। बालवयस्क सूत पुराणी कथा कहनेवाले और आबालवृद्ध ऋषि-मुनि सामान्यजन कथा सुननेवाले। उपदेशक महोदय बीच-बीचमें **'अयि बालाः समाहिता भवन्तु'** की टेक लगाते रहते थे। कुछ वृद्ध मुनिगण एक बार इस टेकके पुनरावर्तनसे रुष्ट हो गये और वे विष्णुभगवान्के पास शिकायत करने गये। 'वृद्धोंको बालक कहना क्या उचित है?' यह प्रश्न भगवान्से पूछा। श्रीभगवान्ने कहा—'इसका उत्तर ब्रह्माजी देंगे।' सब वहाँ गये। श्रीब्रह्माजीने कहा—'अपने डमरूनादद्वारा जिन्होंने विद्याओंका प्रचार सर्वप्रथम किया, वे शिवशंकर ही इसका निराकरण कर सकते हैं।' मुनिगण कैलासको गये।

सदाशिव योगी ठहरे। उन्होंने अपने रुद्ररूपको त्यागकर 'दक्षिणामूर्ति'का सौम्य जगद्गुरुरूप धारण कर लिया और एक विशाल वटवृक्ष-तले वे दक्षिण हस्तमें भद्रामुद्रा और वाम हस्तमें त्रिशूल लेकर मौनव्रतधारी हो समाधिस्थ बैठ गये।

मुनिगण वृक्षकी सघन छायामें बैठ गये और शिवजीके समाधिसे जाग्रत् होनेकी राह देखते रहे। बैठे-बैठे वे आपसमें इस दृश्यपर विचार भी करने लगे—

सौम्य स्वरूप, समाधिस्थ, मौन! फिर भी दक्षिण हस्तकी तीन अँगुलियाँ अलग और जुड़ी हुईं एवं दूसरी ओर प्रथमा अँगुलीका अग्रभाग अंगुष्ठके अग्रसे मिला हुआ है। इस भद्रा मुद्रासे कोई सांकेतिक उपदेश तो नहीं दिया जा रहा है। विचारधारा और आगे बह चली।

तीन ताप, तीन गुण, तीन अवस्था, तीन आयु—इन सारी त्रिपुटियोंको पार करके, 'अ उ म' की तीक्ष्ण त्रिशूल-धारसे छेदन करता हुआ, जो जीवात्मा एकाग्रचित्त होकर परमात्मा—अंगुष्ठमात्रपुरुषः—की ओर झुक नहीं जाता, वह उपदेश सुनते हुए भी अबोध ही है। इसलिये वह 'बाल ही है।' हम यदि कथारसमें तल्लीन होते तो **'अयि बालाः'** का नाद हमारे कानोंका स्पर्श करनेपर भी, हम उसे सुनते ही नहीं। और न हमें रोष आता।

वाह री संकेत करनेवाली मुद्रा भद्रा—कल्याणकारिणी मुद्रा। गुरु मौन, फिर भी शिष्योंका संशय छिन्न हो गया।

नीचेके श्लोकोंमें इसी चित्रकी झाँकी भलीभाँति झलक रही है—

वटविटपसमीपे भूमिभागे निषण्णं
सकलमुनिजनानां ज्ञानदातारमारात्।
त्रिभुवनगुरुमीशं दक्षिणामूर्तिदेवं
जननमरणदुःखच्छेददक्षं नमामि॥
चित्रं वटतरोर्मूले वृद्धाः शिष्या गुरुर्युवा।
गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तु छिन्नसंशयाः॥
ॐ नमः प्रणवार्थाय शुद्धज्ञानैकमूर्तये।
निर्मलाय प्रशान्ताय दक्षिणामूर्तये नमः॥
निधये सर्वविद्यानां भिषजे भवरोगिणाम्।
गुरवे सर्वलोकानां दक्षिणामूर्तये नमः॥

पर्यावरण-चिन्तन—

आज भी खरे हैं तालाब

[पालके किनारे रखा इतिहास]

(श्रीअनुपमजी मिश्र)

'अच्छे-अच्छे काम करते जाना,' राजाने कूड़न किसानसे कहा था।

कूड़न, बुढ़ान, सरमन और कौंराई थे चार भाई। चारों सुबह जल्दी उठकर अपने खेतपर काम करने जाते। दोपहरको कूड़नकी बेटी आती, पोटलीमें खाना लेकर।

एक दिन घरसे खेत जाते समय बेटीको एक नुकीले पत्थरसे ठोकर लग गयी। उसे बहुत गुस्सा आया। उसने अपनी दरांतीसे उस पत्थरको उखाड़नेकी कोशिश की। पर लो, उसकी दरांती तो पत्थरपर पड़ते ही लोहेसे सोनेमें बदल गयी और फिर बदलती जाती हैं इस लम्बे किस्सेकी घटनाएँ बड़ी तेजीसे।

पत्थर उठाकर लड़की भागी-भागी खेतपर आती है। अपने पिता और चाचाओंको सब कुछ एक साँसमें बता देती है। चारों भाइयोंकी साँस भी अटक जाती है। जल्दी-जल्दी सब घर लौटते हैं। उन्हें मालूम पड़ चुका है कि उनके हाथमें कोई साधारण पत्थर नहीं है, पारस है। वे लोहेकी जिस चीजको उससे छुआते हैं, वह सोना बनकर उनकी आँखोंमें चमक भर देती है।

पर आँखोंकी यह चमक ज्यादा देरतक नहीं टिक पाती। कूड़नको लगता है कि देर-सबेर राजातक यह बात पहुँच ही जायगी और तब पारस छिन जायगा। तो क्या यह ज्यादा अच्छा नहीं होगा कि वे खुद जाकर राजाको सब कुछ बता दें।

किस्सा आगे बढ़ता है। फिर जो कुछ घटता है, वह लोहेको नहीं बल्कि समाजको पारससे छुआनेका किस्सा बन जाता है।

राजा न पारस लेता है, न सोना। सब कुछ कूड़नको वापस देते हुए कहता है—'जाओ, इससे अच्छे-अच्छे काम करते जाना, तालाब बनाते जाना।'

यह कहानी सच्ची है, ऐतिहासिक है—नहीं मालूम। पर देशके मध्य भागमें एक बहुत बड़े हिस्सेमें यह इतिहासको अँगूठा दिखाती हुई लोगोंके मनमें रमी हुई है। यहींके पाटन नामक क्षेत्रमें चार बहुत बड़े तालाब आज भी मिलते हैं और इस कहानीको इतिहासकी कसौटीपर कसनेवालोंको लजाते हैं—चारों तालाब इन्हीं चारों भाइयोंके नामपर हैं। बुढ़ागरमें बूढ़ा सागर है, मझगवाँमें सरमन सागर है, कुँआग्राममें कौंराई सागर है तथा कुण्डम गाँवमें कुण्डम सागर।

सन् १९०७ ई० में गजेटियरके माध्यमसे इस देशका 'व्यवस्थित' इतिहास लिखने घूम रहे अंग्रेजने भी इस इलाकेमें कई लोगोंसे यह किस्सा सुना था और फिर देखा-परखा था इन चार बड़े तालाबोंको। तब भी सरमन सागर इतना बड़ा था कि उसके किनारेपर तीन बड़े-बड़े गाँव बसे थे और तीनों गाँव इस तालाबको अपने-अपने नामोंसे बाँट लेते थे। पर वह विशाल ताल तीनों गाँवोंको जोड़ता था और सरमन सागरकी तरह स्मरण किया जाता था। इतिहासने सरमन, बुढ़ान, कौंराई और कूड़नको याद नहीं रखा; लेकिन इन लोगोंने तालाब बनाये और इतिहासको उनके किनारेपर रख दिया था।

देशके मध्य भागमें, ठीक हृदयमें धड़कनेवाला यह किस्सा उत्तर-दक्षिण, पूरब-पश्चिम—चारों तरफ किसी-न-किसी रूपमें फैला हुआ मिल सकता है और इसीके साथ मिलते हैं सैकड़ों, हजारों तालाब। इनकी कोई ठीक गिनती नहीं है। इन अनगिनत तालाबोंको गिननेवाले नहीं, इन्हें तो बनानेवाले लोग आते रहे और तालाब बनते रहे।

किसी तालाबको राजाने बनाया तो किसीको रानीने, किसीको किसी साधारण गृहस्थने, विधवाने बनाया तो किसीको किसी असाधारण साधु-सन्तने—जिस किसीने भी तालाब बनाया, वह महाराज या महात्मा ही कहलाया। एक कृतज्ञ समाज तालाब बनानेवालोंको अमर बनाता था और लोग भी तालाब बनाकर समाजके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते थे।

समाज और उसके सदस्योंके बीच इस विषयमें

एक ठीक तालमेलका दौर कोई छोटा दौर नहीं था। एकदम महाभारत और रामायणकालके तालाबोंको अभी छोड़ दें तो भी कहा जा सकता है कि कोई पाँचवीं सदीसे पन्द्रहवीं सदीतक देशके इस कोनेसे-उस-कोनेतक तालाब बनते ही चले आये थे। कोई एक हजार वर्षतक अबाध गतिसे चलती रही इस परम्परामें पन्द्रहवीं सदीके बाद कुछ बाधाएँ आने लगी थीं, पर उस दौरमें भी यह धारा पूरी तरहसे रुक नहीं पायी, सूख नहीं पायी। समाजने जिस कामको इतने लम्बे समयतक बहुत व्यवस्थित रूपमें किया था, उस कामको उथल-पुथलका वह दौर भी पूरी तरहसे मिटा नहीं सका। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदीके अन्ततक भी जगह-जगहपर तालाब बन रहे थे।

लेकिन फिर बनानेवाले लोग धीरे-धीरे कम होते गये। गिननेवाले कुछ जरूर आ गये पर जितना बड़ा काम था, उस हिसाबसे गिननेवाले बहुत ही कम थे और कमजोर भी। इसलिये ठीक गिनती भी कभी हो नहीं पायी। धीरे-धीरे टुकड़ोंमें तालाब गिने गये, पर सब टुकड़ोंका कुल मेल कभी बिठाया नहीं गया, लेकिन इन टुकड़ोंकी झिलमिलाहट पूरे समग्र चित्रकी चमक दिखा सकती है।

लबालब भरे तालाबोंको सूखे आँकड़ोंमें समेटनेकी कोशिश किस छोरसे शुरू करें? फिरसे देशके बीचके भागमें वापस लौटें।

आजके रीवा जिलेका जोड़ौरी गाँव है, कोई २५०० की आबादीका, लेकिन इस गाँवमें १२ तालाब हैं। इसीके आसपास है ताल मुकेदान, आबादी है बस कोई १५०० की, पर १० तालाब हैं गाँवमें। हर चीजका औसत निकालनेवालोंके लिये यह छोटा-सा गाँव आज भी १५० लोगोंपर एक अच्छे तालाबकी सुविधा जुटा रहा है। जिस दौरमें ये तालाब बने थे, उस दौरमें आबादी और भी कम थी। यानी तब जोर इस बातपर था कि अपने हिस्सेमें बरसनेवाली हरेक बूँद इकट्ठी कर ली जाय और संकटके समयमें आसपासके क्षेत्रोंमें भी उसे बाँट लिया जाय। वरुण देवताका प्रसाद गाँव अपनी अँजुलीमें भर लेता था।

और जहाँ प्रसाद कम मिलता है? वहाँ तो उसका एक कण, एक बूँद भी भला कैसे बगरने दी जा सकती थी। देशमें सबसे कम वर्षाके क्षेत्र जैसे राजस्थान और उसमें भी सबसे सूखे माने जानेवाले थारके रेगिस्तानमें बसे हजारों गाँवके नाम ही तालाबके आधारपर मिलते हैं। गाँवोंके नामके साथ ही जुड़ा है 'सर'। सर यानी तालाब। सर नहीं तो गाँव कहाँ? यहाँ तो आप तालाब गिननेके बदले गाँव ही गिनते जायँ और फिर इस जोड़में २ या ३ का गुणा कर दें।

जहाँ आबादीमें गुणा हुआ और शहर बना, वहाँ भी पानी न तो उधार लिया गया, न आजके शहरोंकी तरह कहीं औरसे चुराकर लाया गया। शहरोंने भी गाँवोंकी तरह ही अपना इन्तजाम खुद किया। अन्य शहरोंकी बात बादमें, एक समयकी दिल्लीमें कोई ३५० छोटे-बड़े तालाबोंका जिक्र मिलता है।

गाँवसे शहर, शहरसे राज्यपर आयें। फिर रीवा रियासत लौटें। आजके मापदण्डसे यह पिछड़ा हिस्सा कहलाता है, लेकिन पानीके इन्तजामके हिसाबसे देखें तो पिछली सदीमें वहाँ सब मिलाकर कोई ५००० तालाब थे।

नीचे दक्षिणके राज्योंको देखें तो आजादी मिलनेसे कोई सौ बरस पहलेतक मद्रास प्रेसिडेंसीमें ५३,००० तालाब गिने गये थे। वहाँ सन् १८८५ ई० में सिर्फ १४ जिलोंमें कोई ४३,००० तालाबोंपर काम चल रहा था। इसी तरह मैसूर राज्यमें उपेक्षाके ताजे दौरमें, सन् १९८० ई० तकमें कोई ३९,००० तालाब किसी न किसी रूपमें लोगोंकी सेवा कर रहे थे।

इधर-उधर बिखरे ये सारे आँकड़े एक जगह रखकर देखें तो कहा जा सकता है कि इस सदीके प्रारम्भतक आषाढ़के पहले दिनसे भादोंके अन्तिम दिनतक कोई ११ से १२ लाख तालाब भर जाते थे और अगले जेठतक वरुण देवताका कुछ-न-कुछ प्रसाद बाँटते रहते थे।

क्योंकि लोग अच्छे-अच्छे काम करते जाते थे।

साधन-सूत्र

[वर्तमानके कर्मोंका महत्त्व]

(आचार्य श्रीगोविन्दरामजी शर्मा)

शास्त्रोंमें मनुष्य जीवनको 'कर्मयोनि' अथवा 'साधनयोनि' कहा गया है; क्योंकि इस जीवनमें उसे कर्म करनेकी स्वतन्त्रता प्रदान की गयी है। पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि योनियाँ भोगयोनियाँ हैं, जिनमें कर्मों-की स्वतन्त्रता नहीं है। गीताके चौदहवें अध्यायमें कर्मोंके करनेमें हमारी त्रिगुणात्मक प्रकृतिको कारण बताया गया है। प्रत्येक मनुष्य सत्त्व, रज और तम-प्रकृतिके इन तीनों गुणोंसे प्रभावित होकर कर्म करता है। सत्त्व गुणसे प्रेरित व्यक्ति श्रेष्ठ कर्म करता है तथा उसे सुख, ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फलकी प्राप्ति होती है। वह जीवनमें सुखपूर्वक जीता है तथा अन्तमें स्वर्ग आदि उच्च लोकोंको प्राप्त करता है। रजोगुणसे प्रेरित व्यक्ति नाना प्रकारकी कामनाओंके अधीन होकर मध्यम (सांसारिक) कर्म करता है तथा उसे दु:खोंकी प्राप्ति होती है। वह जीवनमें लोभके कारण अशान्त रहता है तथा अन्तमें पुन: मनुष्यलोकको प्राप्त करता है। तमोगुणसे प्रेरित व्यक्ति प्रमाद, मोह और अज्ञानके अधीन होकर निम्न कर्म करता है तथा उसे यातनाओंसे भरा निकृष्ट जीवन मिलता है। अन्तमें वह अधोगतिको अर्थात् कीट, पशु, वृक्ष आदि नीच योनियों तथा नरकोंको प्राप्त करता है। इन तीनों गुणोंसे अतीत (गुणातीत) व्यक्ति जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकारके दु:खोंसे मुक्त होकर परमानन्दको प्राप्त करता है तथा परमात्माके स्वरूपको प्राप्त कर लेता है।

अत: शास्त्रोंमें कर्मोंके महत्त्वपर बल दिया गया है; क्योंकि कर्म ही हमारे जीवनको श्रेष्ठ, साधारण और अधम बनाते हैं। स्थूल रूपमें कर्म तीन प्रकारके होते हैं—क्रियमाण कर्म, संचित कर्म तथा प्रारब्ध कर्म। जो कर्म हम वर्तमानमें कर रहे हैं, वे क्रियमाण कर्म कहलाते हैं, जो क्रियमाण कर्म हम कर चुके हैं, वे इकट्ठे होते हैं तथा संचित कर्म कहलाते हैं तथा जो संचित कर्म फल देनेके लिये पक गये हैं तथा हमारा भाग्य बनकर हमें भोगनेके लिये विवश कर रहे हैं, वे प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। हमारा वर्तमान जीवन पूर्वके कर्मोंका परिणाम है तथा इस जन्ममें हम जो कर्म कर रहे हैं, उनसे हमारा वर्तमान जीवन भी बनता है और भविष्यका भी; क्योंकि कुछ कर्म तात्कालिक फल देनेवाले होते हैं तथा कुछ कर्म समय पाकर कालान्तरमें फल देते हैं। कर्मोंसे ही हमारे शुद्ध-अशुद्ध संस्कार बनते हैं, जो पुन: हमें तदनुसार कर्म करनेके लिये प्रेरित करते हैं। इसलिये गीता कहती है—

कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मण:।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गति:॥

कर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये और अकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये तथा विकर्मका स्वरूप भी जानना चाहिये; क्योंकि कर्मकी गति गहन है। (गीता ४।१७) व्यक्ति जब प्रकृतिके साथ सम्बन्ध जोड़कर ममता और कामनासहित क्रिया करता है तो वह क्रिया 'कर्म' बनकर फल देनेवाली हो जाती है। जब वह निष्कामभावसे फलकी अपेक्षा न करते हुए कर्म करता है तो वह कर्म 'अकर्म' बनकर रह जाता है तथा फल देनेवाला नहीं होता है। इसके अतिरिक्त शास्त्र-विरुद्ध अथवा निषिद्ध आचरण 'विकर्म' कहलाते हैं। सकाम कर्म हमें अपनी प्रकृतिके अनुसार शुभ-अशुभ कर्मोंसे बाँधते हैं, निष्काम कर्मोंसे हम बँधते नहीं हैं तथा विकर्म हमें निश्चय ही अवनतिके गर्तमें ले जाते हैं।

प्रत्येक जीव अपने पूर्वजन्मके संचित कर्मोंका फल वर्तमान समयमें भोगता है। उन्हींके अनुसार ही उसका प्रारब्ध बना करता है। अगर उसके वर्तमानमें किये जानेवाले कर्म अर्थात् क्रियमाण कर्म श्रेष्ठ नहीं हैं तो उनका परिणाम उसे दु:खों, चिन्ताओं, अशान्तिके रूपमें भोगना पड़ेगा। कर्मोंसे बननेवाली गतिको स्पष्ट करनेके

लिये एक सुन्दर दृष्टान्त दिया जाता है।

एक धनी व्यक्ति बहुत सत्संगप्रेमी तथा सन्तोंकी सेवा करनेवाला था। उसके घरपर साधु-महात्मा आते रहते थे तथा वह अपनी श्रद्धा-भावनाके अनुसार उनकी सेवा किया करता था। वह उनके आवास, भोजन, वस्त्र आदिका पूरा प्रबन्ध करता था। ईश्वरकी कृपासे उसके पास अन्न, धन, वस्त्र, नौकर-चाकर, मकान आदि प्रचुर मात्रामें थे। इन सब सुविधाओंसे सम्पन्न होते हुए भी वह अनासक्त रहता था तथा सत्संगको ही विशेष महत्त्व देता था। वह इस बातको अच्छी तरहसे जानता था कि यह सब उसके पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंका ही परिणाम है तथा वह अब जो शुभ कर्म करेगा, उससे उसका अगला जन्म उत्तम होगा। अत: वह धनका सदुपयोग अधिक-से-अधिक परोपकार, परमार्थ एवं सदाचार-सम्बन्धी कामोंके लिये करता था। हमारे विचारों एवं आचरणका हमारी संतानपर भी वैसा ही प्रभाव पड़ता है। धनी व्यक्तिके एक लड़की थी, जो उसीके समान उत्तम विचारोंवाली हुई। युवावस्था होनेपर उस लड़कीका विवाह एक धनाढ्य परिवारमें हुआ, किंतु वह परिवार आर्थिक दृष्टिसे सम्पन्न होनेपर भी सत्संग-प्रेमी नहीं था।

एक दिन वह लड़की अपने ससुरालमें सासके पास बैठी थी कि उसी समय बाहरसे किसी साधुने आवाज लगायी कि देवी! कुछ खानेको मिल जाय। सासने बहूको कहा—तू जाकर भिखारीसे कह दे कि यहाँ कुछ नहीं है, आगे जाओ। बहूने सासकी आज्ञाके अनुसार बाहर आकर साधुको कहा—बाबा! आगे जाओ, यहाँ कुछ नहीं है। साधुने पूछा—तो फिर बेटी! तुम लोग क्या खाते हो? बहूने उत्तर दिया—बाबा! हम बासी भोजन खा रहे हैं। साधुने पुन: पूछा—जब बासी भोजन समाप्त हो जायगा तो फिर तुम क्या खाओगे? बहूने प्रत्युत्तरमें कहा—तो फिर हम आपकी तरह दर-दरकी भीख माँगेंगे।

लड़कीसे उचित उत्तर सुनकर साधु तो वहाँसे चला गया, पर सास बहू और साधुका यह वार्तालाप सुन रही थी। बहूके भीतर आते ही उसने उसे आड़े हाथों लिया और कहा कि ऐ नीच संस्कारोंवाली लड़की! तू हमारे घर अच्छे-से-अच्छा खाना खाते हुए भी बाहर हमारा अपयश करती है। बता, हमने तुझे कब बासी खाना दिया, जो तुमने भिखारीको कहा कि हम बासी खाना खा रहे हैं और जब यह भी नहीं मिलेगा तो तुम्हारी तरह भीख माँगते फिरेंगे? इतना कहकर सास क्रोधमें आग-बबूला होकर बहूको अपशब्द बोलने लगी। बहूने सासको शान्त करके समझानेका बहुत प्रयास किया, किंतु सास कहाँ सुननेवाली थी। उसने आवेशमें आकर सम्पूर्ण घरको कलहका मैदान बना डाला और अपने कमरेमें जाकर लेट गयी। बहू बेचारी मन-मसोसकर बैठी रही और भयभीत-भावसे गृह-कार्य करने लगी।

सायंकाल जब ससुर घरमें आया और उसने कोप-भवनमें अपनी पत्नीको देखा और एक ओर मुरझाई-सी बैठी बहूको देखा तो समझ गया कि आज घरमें जरूर कोई विशेष बात हुई है। उसने अपनी पत्नीसे पूछा—क्या बात है? तब पत्नीने जले-कटे शब्दोंमें कहा—यह सब आपकी सुशील बहूकी करतूत है। घरमें सबसे अच्छा खाते-पीते-पहनते हुए भी बाहर हमारा अपयश करती फिर रही है कि हम बासी खाते हैं तथा जब यह भी नहीं मिलेगा तो भीख माँगेंगे। ससुर यद्यपि सत्संग-प्रेमी नहीं था, किंतु समझदार और धैर्यवान् था। उसने पत्नीसे कहा कि ऐसा कहनेमें उसका कोई प्रयोजन होगा? परंतु पत्नी तो कुछ भी सुनना नहीं चाहती थी। उसने मुँह फुलाये हुए कहा—अपनी बहूसे ही पूछ लो क्या बात है? ससुरने बहूसे प्यारसे पूछा—बेटी! आज घरमें क्या बात हुई पूरी तरहसे बताओ? तब बहूने सिर झुकाये हुए अति विनम्रतापूर्वक समस्त वृत्तान्त सुनाते हुए कहा कि पिताजी! आज एक साधु भिखारीने दरवाजेपर आकर भोजनकी माँग की तो माताजीने मुझसे कहा कि जाओ, भिखारीसे कह दो कि घरमें कुछ नहीं है। मैंने इनकी आज्ञा मानकर उस साधुको यही शब्द कहे कि यहाँ कुछ नहीं है। तब उस भिखारीने पूछा कि तुम क्या खा रहे हो? मैंने उत्तरमें कहा—हम बासी भोजन खा रहे हैं। पुन: उसने पूछा—बासी भोजन समाप्त हो जानेपर क्या खाओगे? तब मैंने कहा कि

बाबा! फिर आपकी तरह ही भीख माँगते फिरेंगे।

यह सारी बात सुनकर ससुरने बहूसे पुन: पूछा—बेटी! तुम्हें कब खानेको बासी भोजन मिला है? बहूने कहा—पिताजी! न तो मुझे अपने माता-पिताके घर तथा न ही आपके घरमें किसी सुख-सामग्रीका अभाव रहा है। मेरा जीवन सदैव ही सुख-वैभवमें ही बीता है, किंतु प्रश्न यह है पिताजी! कि यह सब हमें क्यों प्राप्त है? भगवान्‌की सृष्टिमें अनेक प्राणी हैं, जिनको भरपेट भोजन नहीं मिलता है, पहननेको वस्त्र नहीं हैं, रहनेको मकान नहीं है, जबकि हमें भगवान्‌ने सब कुछ दिया है। यह अन्तर क्यों है? भगवान् तो किसीके साथ भेदभाव नहीं करते। उनकी दृष्टिमें सभी समान हैं। मैं समझती हूँ यह सब हमारे पूर्वजन्मके कर्मोंका ही सुपरिणाम है। पूर्वजन्मके शुभ कर्मोंसे ही हमें सब प्रकारके सुख प्राप्त हैं। वास्तवमें इसीका नाम बासी भोजन है। अगर हम वर्तमानमें भजन-सत्संग, साधु-महात्माओंकी सेवा, दान, पुण्य आदि नहीं करेंगे तो आगेके लिये यह आशा रखना कि हमें सुख-सम्पत्तिके सामान मिलेंगे, यह असम्भव बात है। यदि हम चाहते हैं कि भविष्यमें भी हमें सब प्रकारके सुख उपलब्ध हों तो अभीसे उसीके अनुकूल दान-पुण्य, कथा-कीर्तन तथा परमार्थके कार्य करने चाहिये तथा अपने धन एवं अमूल्य समयका श्रेष्ठ उपयोग करना चाहिये।

ससुरने पूछा बेटी! भिक्षा माँगनेका क्या अर्थ हुआ? बहूने कहा—जिसने इस जीवनमें शुभ एवं श्रेष्ठ कर्म नहीं किये, उसको जैसा प्रारब्धके अनुसार मिलेगा, उसपर ही गुजर करना पड़ेगा। जैसे भिखारीको जो कुछ भी भिक्षामें मिल जाय, उसको उसीपर सन्तुष्ट रहना पड़ता है। बहूकी विवेक एवं ज्ञानभरी बातें सुनकर ससुर बहुत आश्चर्यचकित हुआ। उसका विवेक जाग्रत् हो गया तथा उसे ज्ञान एवं वैराग्य हो गया। उसने बहूसे कहा—पुत्री! अमुक कमरेमें जो गेहूँ, चने एवं जौ मिश्रित हैं, कलसे उसको पिसवाकर भिखारियों एवं अतिथियोंको भोजन करवाया करो। वस्तुत: वह गेहूँ आदि पुराना था तथा उसमें घुन भी लगे हुए थे। ससुर धनाढ्य तो थे ही। घरमें किसी बातकी कमी भी नहीं थी। ससुरजीके कहे अनुसार बहूने वैसा ही किया और उसी आटेकी रोटी बनाकर ससुरजीके आगे परोसी। चने एवं जौमिश्रित रोटी जब सेठजी खाने लगे तो वह रोटी उनके गले नहीं उतरती थी। उस समय उन्होंने बहूसे पूछा—बेटी! आज कौनसे आटेकी रोटी बनायी है, जिसके खानेसे गला लकड़ीके समान खुश्क हो रहा है? यह सुनकर बहूने पूर्ववत् नम्रतासे कहा—पिताजी! उसी गेहूँकी रोटी आज घरमें बनायी है, जिसको आपने भिखारियोंमें बाँटनेको कहा था। बहूसे यह उत्तर पाकर सेठ विस्मित हो उससे पूछने लगा कि 'ऐसा क्यों?' तब बहूने कहा—पिताजी! इसमें हैरान होनेकी बात नहीं; क्योंकि इस जन्ममें जिस प्रकारका अन्न दान किया जायगा, वैसा ही अन्न हमें भविष्यमें मिलेगा। मैंने आपको दिखानेके लिये ही ऐसा किया है। पिताजी! इस समय यदि आपको यह भोजन पसन्द नहीं है तो क्या आगे चलकर परलोकमें यह भोजन आपको रुचिकर लगेगा? अपनी बातको आगे बढ़ाते हुए बहूने कहा कि जिस प्रकारके श्रेष्ठ क्रियमाण कर्म इस समयमें हम करेंगे, वैसा ही फल हमें अगले जन्ममें मिलेगा।

बहूकी यह बात सेठजीके हृदयमें अच्छी तरह बैठ गयी और उन्होंने अच्छे गेहूँका आटा पिसवाकर तथा अच्छा भोजन बनवाकर घरके सामने अन्न-क्षेत्र शुरू कर दिया।

इस दृष्टान्तका यही तात्पर्य है कि प्रत्येक मनुष्यको वर्तमानमें श्रेष्ठ एवं उत्तम कर्म करने चाहिये; क्योंकि वर्तमानके क्रियमाण कर्म ही संचित होकर हमारा प्रारब्ध बनानेवाले हैं। हमारा दु:खित वर्तमान यह विचार करनेके लिये बाध्य करता है कि यह सब हमारे ही किये हुए कर्मोंका फल है। जीवको मनुष्य-जन्ममें जो कर्मोंकी स्वतन्त्रता मिली है, उसका सदुपयोग करते हुए वर्तमानके प्रारब्धको भोगते हुए भविष्यके लिये सुन्दर जीवनका सर्जन करना चाहिये। हम अपने शुभ कर्मोंद्वारा आवागमनसे मुक्त हो सकते हैं तथा वर्तमानको भी श्रेष्ठ एवं सुखी बना सकते हैं।

श्रीरामकथाका एक पावन-प्रसंग—

शरणागतवत्सल

[श्रीरामने वक्षपर अमोघ शक्ति झेली]

(आचार्य श्रीरामरंगजी)

वानरोंद्वारा दिग्दिगंतको स्तम्भित करनेवाले 'जय श्रीराम'के घनघोर घोषके मध्य श्रीराम लक्ष्मणसहित रावणकी ओर बढ़ चले। श्रीरामको पूर्णतः स्वस्थ लक्ष्मणसहित अपनी ओर बढ़ता देखकर, एक बार तो रावणको अपने नेत्रोंपर विश्वास ही नहीं हुआ। 'वीरघातिनी निष्प्रभावी हो गयी।' इसी कारण मेरे पौरुषपर व्यंग्य करता हुआ यह विभीषण गदा कन्धेपर रखे हुए कैसी अभीत मुद्रामें किसी गजराजके समान झूमता हुआ चला आ रहा है। इन दोनों बन्धुओंसे पूर्व मुझे अपने ही इस बन्धुको पाठ पढ़ाना पड़ेगा।' मन-ही-मन कहते हुए, रावणने एक भीषण शक्ति विभीषणको लक्ष्य बनाकर छोड़ दी। वह उल्कापिण्ड उगलती हुई, प्रचण्ड घण्टानाद करती हुई शक्ति ज्यों ही विभीषणके समीप पहुँचनेको उद्यत देखी, रावण अट्टाहास करते हुए बोला—

'अरे शिवधनुभंजनके अहंकारमें चूर! भार्या-विरही! बालिवधिक! इस शक्तिके प्रहारसे यह कुलद्रोही विभीषण तो निमिषमात्रमें कालका ग्रास बनेगा ही, साथ ही तेरा शरणागतवत्सलताका पाखण्ड भी खण्डित होगा। दशकन्धर एक बाणसे कई-कई लक्ष्य बींधनेमें सदैवसे ही सिद्धहस्त रहा है। आज उसकी कीर्तिपताका तेरे कुलगुरु इस सूर्यदेवको भी अमावस्याकी कालरात्रिके पदपीठपर डाल देगी। यदि उसकी रक्षा कर सके तो कर ले। जगतीके चित्तको चमत्कृत करनेवाला कोई पराक्रम प्रदर्शित कर सकता है तो कर ले। रक्षेश्वर तुझे चुनौती दे रहा है।'

दोनों दलोंकी ओरसे 'विभीषण मारे गये, मारे गये' के उठते स्वरोंके मध्य प्रभंजनगतिसे बढ़ती हुई रावणकी शक्ति अभी विभीषणसे हाथ-भरकी दूरीपर ही थी कि अन्य उपाय न देखकर, तुरंत विभीषणको पीछेकर, उस शक्तिके समक्ष श्रीरामने अपना प्रशस्त वक्ष प्रस्तुत कर दिया। कवचको विदीर्ण करती हुई, एक गहरा घाव वक्षमें देती हुई, भयंकर भुजंगिनीकी भाँति फुंकारती हुई, वह वक्षमें प्रवेश कर गयी। श्रीराम अपने ही रक्तसे नहा गये। पीताम्बर रक्ताम्बर हो गये। प्रत्यंचित धनुषकी पकड़ ढीली पड़ गयी। आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। वानरसेना हा-हाकार कर उठी। निशाचरदल हर्षातिरेकमें झूमते हुए, 'जय लंकेश' की ध्वनिसे आकाशको गुँजाने लगे। सौमित्रि लक्ष्मण श्रीरामको सम्हालते हुए धरतीपर बैठ गये। धन्वन्तरि-अंशोत्पन्न वानरराज सुषेण चिकित्सामें जुट गये।
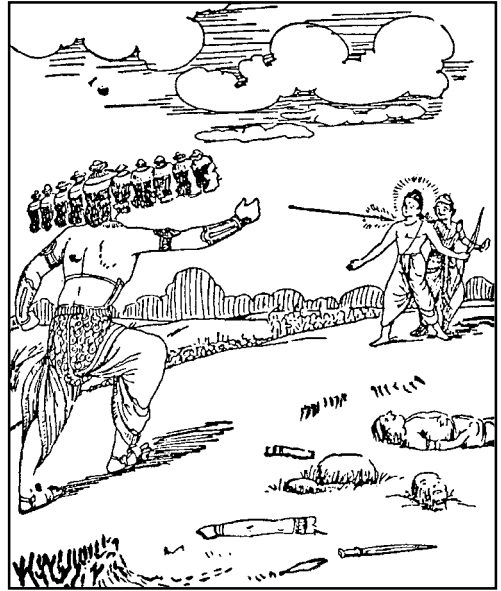
'लंकामें अकस्मात् यह प्रसन्नताका वातावरण कैसे उत्पन्न हो गया?', रहस्य जाननेके लिये त्रिजटा अशोक-वाटिकासे निकल चली। कुछ दूरीपर जाते ही, समस्त समाचारसे अवगत होकर वह खिन्नवदन लौट आयी। जानकीके बार-बार पूछनेपर भी उसके मुखसे तो कोई शब्द नहीं निकला किंतु धान्यमालिनीकी दो दासियोंने आकर उच्च स्वरसे समस्त घटनाका वर्णन कर डाला।

जानकी करबद्ध मुद्रामें सूर्यकी ओर देखते हुए खड़ी होकर प्रार्थना करते हुए बोलीं, 'यदि मैं मन-वचन-कर्मसे सदैव श्रीरघुनन्दनकी किंकरी रही तो मेरे स्वामी मेरे अपहर्ताका अन्त करनेके लिये निद्रा-मुक्तकी भाँति चैतन्य हो जायँ।'

उधर सुषेण ऋष्यमूकपर उत्पन्न कुछ औषधियाँ जो वे आते समय ले आये थे, उनसे श्रीरामकी चिकित्सा कर ही रहे थे। प्रार्थना और साधना दोनों फलवती हो गयीं। श्रीरामने उठकर खड़े होते ही देखा कि गदा घुमाते हुए विभीषण रावणसे विकट संघर्ष कर रहे हैं। उनके संकेतपर सुग्रीव-अंगदसहित मारुति दौड़ पड़े। उनका मार्ग रोकनेवाले महोदरसे सुग्रीव एवं महापार्श्वसे अंगदका द्वन्द्व युद्ध होने लगा। मारुति विरूपाक्षको धक्का देते हुए रावणके रथपर चढ़ गये। रावणके वक्षपर उछलकर चरण-प्रहार करते हुए, विभीषणको अपने अंकमें भरकर वे रथसे कूद पड़े। राघव विभीषणको सकुशल देखकर किंचित् रोषमें भरकर, क्रोधसे काँपते हुए विभीषणसे बोले—'इस प्रकार बिना सोचे-समझे, यदि जीवनसे खिलवाड़ करोगे तो विचारो इस बेचारे रामका क्या होगा?' उत्तरमें विभीषण शब्दोंको खोजते रह गये। प्रभुके वक्षपर लगे गम्भीर घावपर उनकी दृष्टि ठिठकी क्या अटकी-की-अटकी रह गयी। हिचकी बँध गयी। नेत्रोंकी निर्झरिणीका प्रवाह ठहरना भूल गया।

रावण राम-लक्ष्मणके मध्यमें खड़े हुए विभीषणको देखकर अपने सारथीको आदेश देते हुए बोला—'सूतराज! दीन-हीन अवस्थामें निराश्रितोंकी भाँति धरतीपर खड़े हुए इन तापस बन्धुओंके साथ कुलद्रोही विभीषणको रथ बढ़ाकर कुचल डालो। विधाताने अनायास कितना सुन्दर अवसर प्रदान किया है कि सभी एक साथ मिल रहे हैं। शीघ्रतापूर्वक इसका सदुपयोगकर संग्रामका अन्त कर डालो।'

रावणके शब्द सुनते ही क्रोधमें भरे हुए राघवने एक प्रखर नाराचके प्रहारसे सारथिका शिरच्छेद कर डाला। उसके चारों अश्वोंको भी तुरंत धरती सूँघनेपर बाध्य कर दिया। रावण अपनी वेदीसे उतरकर सारथिके स्थानपर खड़े होकर बाण बरसाने लगा। उन्होंने उसके धनुषोंकी प्रत्यंचाएँ काटते हुए, वेदीके पृष्ठागारमें संचित आयुध-भण्डारको आग्नेयास्त्रोंसे धधका दिया। अपने ही आयुधोंके विस्फोटसे घबराकर रावण रथसे कूदते हुए, किसी ढहते हुए स्तम्भमें उलझकर धरतीपर गिर पड़ा। उसकी बाँह पकड़कर उसे उठाते हुए, राघव हँसते हुए बोले—'दशानन! जाओ। अपनी अपहृताओंके उष्ण अश्रुओंमें भीगे हुए अवलेपोंसे अपनी चिकित्सा कराकर, निर्णायक रण करने आ जाओ। राघव निश्शस्त्र-दीन-हीन अवस्थामें पड़े हुए असहाय शत्रुपर प्रहार नहीं किया करते। मैं स्वस्थ हूँ।'

महोदर और महापार्श्वके शवोंको अनदेखा करते हुए, विरूपाक्षका आश्रय लेता हुआ रावण दुर्गके प्रमुख द्वारके एक गवाक्षके गुप्त यन्त्रको सरकाकर लंकामें प्रविष्ट हो गया।

आवत देखि सक्ति अति घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषन पाछें मेला। सन्मुख राम सहेउ सोइ सेला॥

स्नेह और रक्षाका पर्व—रक्षाबन्धन

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)

रक्षाबन्धनका पुनीत पर्व श्रावणमासकी पूर्णिमाको पूरे भारतमें बड़े हर्षोल्लासके साथ मनाया जाता है। रक्षासूत्रको राखी भी कहते हैं। यह कच्चे सूत्रकी मोली लाल, पीले और सफेद रंगकी होती है। कहीं-कहीं दो रंगकी मोली भी होती है। लाल रंग शत्रुको दबानेके लिये तथा पीला रंग हमेशा शान्तिके लिये माना गया है। रक्षाबन्धन करनेसे पूर्व धागोंको अभिमन्त्रित किया जाता है।

रक्षासूत्रका अर्थ है रक्षाकी व्यवस्था। जिस व्यक्तिके रक्षासूत्र बाँधा जाता है, उसकी रक्षाकी भावना रक्षा-सूत्रमें निहित होती है। यज्ञसूत्रमें भी सांसारिक संकटोंसे रक्षाकी भावना निहित थी। आज भी यज्ञादिमें रक्षासूत्र बाँधनेकी परम्परा है, जिसे साधारणतः मोली कहा जाता है। तान्त्रिक साधनामें भी गुरुजन अपने शिष्योंके अभिमन्त्रित रक्षासूत्र बाँधते हैं, जिसका उद्देश्य होता है अनिष्टकारी भूतप्रेतादिके आक्रमणसे रक्षा। साधारण पूजन, कथामें भी रक्षासूत्र बाँधनेकी प्रथा है। बहनद्वारा भाईकी कलाईमें राखी अर्थात् रक्षासूत्र बाँधनेमें उसकी स्नेह-भावना तथा कल्याणकी भावना होती है। श्रावण शुक्ल पूर्णिमाको यदि भद्रा हो तो रक्षाबन्धन नहीं करना चाहिये। शास्त्रोंमें वर्णित है—

भद्रायां द्वे न कर्तव्ये श्रावणी फाल्गुनी तथा।
श्रावणी नृपतिं हन्ति ग्रामं दहति फाल्गुनी॥

अर्थात् भद्रामें श्रावणी एवं फाल्गुनी दोनों कर्म वर्जित हैं; क्योंकि भद्रामें श्रावणीसे राजाका और फाल्गुनीसे प्रजाका अनिष्ट होता है। रक्षाबन्धन वास्तवमें स्नेह, अपनत्व, शान्ति और रक्षाका बन्धन है। देशके भिन्न-भिन्न भागोंमें इस त्यौहारको अलग-अलग नामोंसे पुकारा जाता है। दक्षिण भारतमें हयग्रीव-जयन्ती, उत्तर भारतमें शकुन-महोत्सवके रूपमें, गुजरात और महाराष्ट्रमें इसे नारियल-पूर्णिमाके रूपमें मनाते हैं। कई जगह इसे राखी पूनम भी कहते हैं। श्रावणी कर्म भी इसी दिन ही किया जाता है। श्रावणी पूर्णिमा ब्राह्मणोंके लिये यज्ञोपवीत बदलनेका दिन, भाई-बहनोंके लिये स्नेह एवं प्रेमका पर्व तथा व्यापारियोंके लिये समुद्र-पूजनका उत्सव—तीन उत्सवोंका त्रिवेणी संगम है।

भाद्रपद शुक्ल पंचमीको भी रक्षाबन्धनके लिये शुभ माना जाता है। भाद्रपद शुक्ल पंचमीको ऋषिपंचमी कहते हैं। इसी दिन ब्राह्मण लोग तर्पणादि करते हैं। यह दिन रक्षाबन्धनके लिये महान् शुभ एवं सिद्ध दिन माना गया है। इस दिन माहेश्वरी, दायमा, ब्राह्मणोंकी कई मुख्य जातियाँ, कायस्थ आदि १६ जातियाँ राखी बाँधती हैं। इस दिन बहनें उपवास रखकर भाइयोंकी दीर्घायु एवं सुख-शान्तिकी कामना करती हैं।

इतिहास

रक्षाबन्धनका प्रारम्भ कब हुआ? इस सम्बन्धमें कई पौराणिक कथाएँ प्रचलित हैं—

पातालके राजा बलिके हाथपर राखी बाँधकर लक्ष्मीजीने उन्हें अपना भाई बनाया एवं नारायणको मुक्त कराया था, उस दिन श्रावणकी पूर्णिमा थी।

पौराणिक मान्यता है कि प्राचीन समयमें देवों और असुरोंमें भीषण युद्ध हुआ। देवता दानवोंसे पराजित होने लगे। इन्द्रने देवगुरु बृहस्पतिसे परामर्श किया कि हमारी रक्षा कैसे हो? देवगुरु बृहस्पतिने श्रावण पूर्णिमाके दिन रक्षा-विधान करनेके लिये कहा, इसके लिये उन्होंने इन्द्रकी पत्नी इन्द्राणीको इस विधानकी विधि और मन्त्र आदि बताये। देवगुरु बृहस्पतिके निर्देशानुसार इन्द्राणीने श्रावण पूर्णिमाको प्रातःकाल ही रक्षा-विधानको विधिवत् सम्पन्न किया और अभिमन्त्रित धागोंको अपने पति देवराज इन्द्रकी कलाईपर बाँधा। इन धागोंको बाँधनेके बाद देवोंने दानवोंपर विजय प्राप्त की। तभीसे यह पर्व प्रारम्भ हुआ।

एक अन्य कथाके अनुसार भक्त श्रवणकुमार अपने नेत्रहीन माता-पिताको तीर्थयात्रा कराने ले जा रहा था। रातको श्रवणकुमारके माता-पिताको प्यास लगी। श्रवण माता-पिताके लिये जल लेने नदीतटपर गया और वहीं राजा दशरथद्वारा जंगली जानवर समझकर बाण छोड़नेसे

उसकी मृत्यु हो गयी। माता-पिता श्रवणकुमारकी मृत्युका समाचार सुनकर बहुत दुखी हुए। राजा दशरथने उन्हें धैर्य बँधाया तथा श्रावणी पूर्णिमाको श्रवणकुमारकी पूजाका सर्वत्र प्रचार किया। उस दिनसे सभी सनातनी जन श्रवणकी पूजा करते हैं तथा पहला रक्षासूत्र उसीको अर्पण करते हैं।

पौराणिक कथाके अनुसार, भगवान् विष्णुके वामनावतारने भी राजा बलिके रक्षासूत्र बाँधा था और उसके उपरान्त ही उन्हें पाताल जानेका आदेश दिया था। आज भी रक्षाबन्धनके समय जो मन्त्र पढ़ा जाता है, उसमें इसी घटनाका जिक्र होता है—

येन बद्धो बली राजा दानवेन्द्रो महाबलः।
तेन त्वाम प्रतिबध्नामि रक्षे मा चल मा चल॥

अर्थात् यह वही रक्षासूत्र है, जिससे महाबली एवं दानवेन्द्र बलिराजा बाँधे गये। उस रक्षासूत्रसे मैं तुम्हें भी बाँधता हूँ। हे राखी! तुम अडिग रहना। प्राचीन भारतमें ऋषि सामान्यत: श्रावणसे कार्तिकतकके चार महीनोंमें भ्रमण नहीं किया करते थे। इस अवधिमें वे किसी एक ही स्थानपर रुककर प्रवचन-यज्ञादि किया करते थे। यज्ञमें सम्मिलित होनेवाले व्यक्तियोंके हाथोंमें अक्सर चिह्नके रूपमें सूत्र बाँध दिया जाता था। यही यज्ञसूत्र आगे चलकर रक्षा-सूत्रके रूपमें प्रयुक्त किया जाने लगा।

समुद्रके किनारे रहनेवाले लोग वरुणदेवहेतु समुद्रकी पूजाकर उसे नारियल अर्पण करते हैं। इस दिन नारियल अर्पण करनेसे वरुणदेव माल लाने-ले जानेवाले जहाजोंकी रक्षा करते हैं। **'सागरे सर्वतीर्थानि'** सरितासे संगम और संगमसे सागर अधिक पवित्र होता है—ऐसा ऋषियोंने कहा है। इस दिन अर्पित नारियलका फल शुभसूचक होता है और सृजन-शक्तिका प्रतीक माना जाता है। जिस तरह नदियाँ अपने सभी कूड़े-कचरेके साथ सागरमें आ मिलती हैं तो भी अचल सागर अपनी प्रतिष्ठासे विचलित नहीं होता, उसी तरह स्थितप्रज्ञ भी सर्वकामनाओंका अपनेमें प्रवेश होनेपर भी अपनी शान्तिको स्थिर रखता है। जिस तरह सर्वसम्पत्ति मिलनेपर भी सागर उन्मत्त नहीं होता है, उसी तरह व्यापारीको अपनी सम्पत्तिका वैभव बढ़नेपर उन्मत्त नहीं होना चाहिये। सागरकी तरह नम्र रहना चाहिये, अपने वैभवका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये तथा अपनी सम्पत्तिको प्रभुको अर्पण करना चाहिये।

इतिहासमें ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि मेवाड़की महारानी कर्मवतीने मुसलमान शासक हुमायूँको अत्याचारी बहादुरशाहके आक्रमणसे मेवाड़की रक्षाके लिये राखी भेजी थी। एक मुसलमान शासक होते हुए भी हुमायूँने बहनकी रक्षाके लिये राखीके महत्त्वको समझा तथा अपनी सेनाके साथ शत्रुओंसे मुकाबला करनेके लिये मेवाड़ जा पहुँचा।

अमरनाथ-यात्राका महत्त्व भी इसी दिनसे जुड़ा हुआ है। गुरु पूर्णिमाके दिन भी श्रीनगरसे चलकर करीब दो सौ किलोमीटर लम्बा सफर तय करके पुजारियोंद्वारा पवित्र छड़ी मुबारकको अमरनाथ गुफामें पहुँचाया जाता है तथा हजारों श्रद्धालु हिमलिंगके दर्शन करने यहाँ पहुँचते हैं।

आजकल लोगोंने इस पर्वको सिर्फ लेन-देनका औपचारिक पर्व बना दिया है। आज रक्षाबन्धनकी मूल भावना लुप्त हो गयी है। आज इस बातकी आवश्यकता है कि हम सब मिलकर यह प्रण करें कि इस स्नेह एवं रक्षाके पर्वकी महत्ताको समझकर भाई-बहनके पवित्र प्रेमको कभी कम न होने देंगे। एक-दूसरेके सुख-दु:खमें बराबरके भागीदार रहेंगे। इस पर्वपर बहन भाईके कल्याणहेतु प्रार्थना करे तथा भाई बहनके रक्षणका दृढ़ संकल्प करे। साथ ही हम सब यह प्रतिज्ञा भी करें कि राष्ट्र-धर्मकी रक्षाके लिये सदा तत्पर रहेंगे तथा परस्पर प्रेमपूर्वक रहकर आदर्श नागरिक बनेंगे।

आजकल ॐ, स्वास्तिक, देवी-देवताओंके चित्रोंकी राखियाँ भी बिकती हैं। प्राय: परिवारोंमें ऐसी आकर्षक राखियोंका उपयोग होने लगा है तथा राखीका उपयोग होनेके बाद उन्हें कचरेमें या इधर-उधर डाल दिया जाता है। इस प्रकारसे देवताओं तथा धर्मप्रतीकोंका अपमान किया जा रहा है। यह शोभनीय नहीं है, राखियोंका अनादर न कर उन्हें जलमें विसर्जित करना चाहिये।

आगमोंका स्वरूप और वैखानस-आगम

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम०ए०, पी-एच०डी०)

अनादिकालसे अध्यात्मज्ञानकी दो समानान्तर धाराएँ भारतमें अजस्र रूपसे प्रवहमान हैं। प्रथम धाराका नाम है—श्रुतिमार्ग और द्वितीय धाराका नाम है—आगम-मार्ग। श्रुतिका ही अपर नाम निगम अथवा वेद है। आगम ही तात्पर्यभेदसे तन्त्र कहलाते हैं। बौद्धादि आगमोंको छोड़कर प्राय: सभी आगम श्रुतिमूलक होनेसे वेदार्थका ही प्रतिपादन करते हैं और वेदके उपबृंहणरूप हैं।

'आगम' शब्दकी संयोजनाके विषयमें जो अति प्रसिद्ध श्लोक है। वह इस प्रकार है—

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजाश्रुतौ।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥

(रुद्रयामलतन्त्र-शाक्तानन्दतरंगिणी)

इसका तात्पर्य यह है कि भगवान् वासुदेवके सिद्धान्त किंवा अभिमतके वक्ता भगवान् शिव हैं और श्रोता भगवती पार्वती हैं। आगतं पदका 'आ' गतं पदका 'ग' और 'मतं' पदका 'म'—इन तीन अक्षरोंके संयोगसे 'आगम' शब्द बना है।

इस दृष्टिसे आगमके मुख्यत: तीन भेद हैं—

(१) शैवागम, (२) शाक्तागम, (३) वैष्णवागम।

शैवागम

इस परम्परामें भगवान् सदाशिवकी ही प्राधान्येन आराधना-उपासना होती है। भगवान् शिवसे सम्बद्ध होनेके कारण ही ये आगम शैवागम कहलाते हैं। शैवागम मुख्यत: (१) भेदप्रतिपादक, (२) भेदाभेद-प्रतिपादक तथा (३) अभेदप्रतिपादक—इस प्रकारसे तीन रूपोंमें प्रविभक्त हैं, इन्हें क्रमश: शिव, रुद्र तथा भैरवके नामसे पुकारा जाता है—

तन्त्रं जज्ञे रुद्रशिवभैरवाख्यमिदं त्रिधा।
वस्तुतो हि त्रिधैवेयं ज्ञानसत्ता विजम्भृते॥
भेदेन भेदाभेदेन तथैवाभेदगामिना।

(तन्त्रालोक, जयरथ टीका १।१८)

शाक्तागम

भगवती आदिशक्ति जगज्जननीके आराधनाविषयक आगम शाक्तागम कहलाते हैं। शाक्त तन्त्रोंकी संख्या चौंसठ मानी गयी है—

चतुष्षष्ट्या तन्त्रैः सकलमतिसन्धाय भुवनम्।

(सौन्दर्यलहरी ३१)

चतु:षष्टी च तन्त्राणि मातॄणामुत्तमानि च।

(कुलचूड़ामणितन्त्र १।४)

चतु:षष्टिश्च तन्त्राणि मातॄणामुत्तमानि तु।

(नित्याषोडशिकार्णव)

कहीं-कहीं विष्णुक्रान्ता, रथक्रान्ता तथा अश्वक्रान्ता—इन नामोंसे पृथक्-पृथक् चौंसठ भेद किये गये हैं। इस प्रकार शाक्तागमोंका भी अत्यधिक विस्तार है।

वैष्णवागम

जिन आगमोंमें एकमात्र भगवान् विष्णु (सशक्तिक) ही परम आराधनीय, वन्दनीय, पूजनीय, सेवनीय, भजनीय, कीर्तनीय तथा शरण ग्रहण करनेयोग्य निरूपित किये गये हैं, वे आगम वैष्णवागमके नामसे प्रसिद्ध हैं।

वैष्णवागमोंके अनुसार सर्वव्यापक परमात्मा ही भगवान् विष्णु हैं। वे ही ब्रह्मवाचक सभी नामोंके वाच्य हैं। उनकी दिव्य व्यापकता जिस प्रकार निर्गुण निराकार रूपमें है, उसी प्रकार सगुण साकार रूपमें भी है। यह सम्पूर्ण विश्व उन परमात्मप्रभुकी ही शक्तिसे व्याप्त है। उन्हींके उन्मेष और निमेषमात्रसे संसारकी उत्पत्ति तथा प्रलय होते हैं और वे ही जगत्‌का पालन करनेवाले हैं। वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी तथा निर्गुण-सगुण दोनोंसे विलक्षण भी हैं। व्यापक होते हुए भी वे एक देशमें अवतरित होते हैं। इस प्रकार विचारदृष्टिसे जो निर्गुण हैं, भावदृष्टिसे वे ही सगुण बन जाते हैं।

इस प्रकार सर्वातिशायी विष्णु, नारायण अथवा वासुदेवकी प्राप्तिविषयक आराधना-प्रक्रियाका प्राधान्येन निरूपण करनेवाले भक्तिपरक शास्त्र वैष्णवागम पदसे अभिहित होते हैं। वैष्णवागमोंकी भी दो प्रमुख शाखाएँ हैं—

(१) पांचरात्र आगम, (२) वैखानस आगम।

पांचरात्र आगम—पांचरात्र आगमके अनुयायी साधक-भक्त सात्वत, भागवत, एकान्तिन, मैकान्तिन् तथा पंचकालज्ञ भी कहलाते हैं। पांचरात्र शब्दका अनेक प्रकारसे अर्थ किया गया है—

ईश्वरसंहिताके अनुसार शाण्डिल्य, औपगायन,

मौंजायन तथा भारद्वाज आदि ऋषियोंके तपसे प्रसन्न हुए नारायणने इस शास्त्रका पाँच रात्रों (अहोरात्रों)-में इन्हें उपदेश दिया था, इसी कारण इस शास्त्रको पांचरात्र कहा गया। नारदपांचरात्रके अनुसार रात्र शब्दका अर्थ है ज्ञान और वह ज्ञान पाँच प्रकारका होता है—

(१) तत्त्व, (२) मुक्तिप्रद, (३) यौगिक, (४) भक्तिप्रद तथा (५) वैशेषिक।

पंचरात्र आगमोंमें ईश्वरके पर, व्यूह, विभव और अर्चा—ये चार रूप प्रसिद्ध हैं, साथ ही एक अन्य अन्तर्यामी रूप भी है। इस प्रकार पंचावतारके रूपमें पांचरात्र शब्दकी सार्थकता सिद्ध की गयी है।

रात्र शब्द अहोरात्रका वाचक है और पंच शब्द पाँच क्रियाओंका बोधक है, वे क्रियाएँ हैं (१) अभिगमन, (२) उपादान, (३) इज्या, (४) स्वाध्याय तथा (५) योग। ये पाँचों क्रियाएँ एक ही दिन (अहोरात्र-रात्र)-में जिस आगममें नियतरूपसे सम्पन्न की जाती हैं, उसे पांचरात्र कहते हैं।

अहिर्बुध्न्यसंहिता, जयाख्यसंहिता, सात्वतसंहिता, पांचरात्ररक्षा, पाद्मसंहिता, यतीन्द्रमतदीपिका, लक्ष्मीतन्त्र, श्रीभाष्य आदि ग्रन्थोंमें इन सिद्धान्तोंकी व्याख्या हुई है। इनमें पांचरात्रागम-प्रक्रियासे भगवान् लक्ष्मीनारायणकी पूजा-सपर्या प्रतिपादित है। श्रीनाथमुनि, यामुनाचार्य तथा श्रीरामानुजाचार्य इस श्रीवैष्णव दर्शनके मुख्य उपदेष्टा आचार्य हैं। षड्विधाशरणागति इस दर्शनकी मुख्य उपलब्धि है। इसमें द्वादश आलवार भक्तों-संतोंकी विशेष प्रतिष्ठा है।

वैखानस आगम—वैष्णवागमकी जो द्वितीय धारा है, वह वैखानस आगमके नामसे प्रसिद्ध है। इनकी आचार संहिता पांचरात्र आगमके समानान्तर होनेपर भी सैद्धान्तिक दृष्टिसे किंचित् भिन्न है। इसमें लक्ष्मीविशिष्ट नारायणकी उपासना होती है। इसलिये इनका अभिमत लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत कहलाता है।

वैखानस शब्दका अर्थ

वैखानस शब्द विखनस् अथवा विखनासे बना है। इसका तात्पर्य है विखनस् अथवा विखनासे सम्बद्ध। इस प्रकार वैखानस शब्द संज्ञा होनेपर भी विशेषणके अर्थमें प्रयुक्त होता है। यथा—वैखानस आगम, वैखानस दर्शन, वैखानस उपासना, वैखानस दिव्य देश तथा वैखानस समाज आदि।

विखना (विखनस) कौन हैं ?

वैखानस उपासनामें एक श्लोक अति प्रसिद्ध है, जो इस प्रकार है—

नारायणः पिता यस्य यस्य माता हरिप्रिया।
भृग्वादि मुनयः शिष्याः (पुत्राः) तस्मै विखनसे नमः॥

इसका तात्पर्य है जिनके पिता साक्षात् नारायण हैं, जिनकी माता विष्णुप्रिया भगवती लक्ष्मी हैं और भृगु, मरीचि आदि मुनिगण जिनके शिष्य (पुत्र) हैं, उन भगवान् विखनाको नमस्कार है।

इस श्लोकके अनुसार विखना मुनि भगवान् नारायणके पुत्ररूप हैं। महर्षि भृगुप्रोक्त अर्चनाधिकार तथा खिलाधिकारमें भगवान् नारायण तथा विखनामें पिता-पुत्रके सम्बन्धको स्वीकार किया गया है। महर्षि भृगुप्रोक्त क्रियाधिकारमें विखनाको विष्णुरूप तथा मुनियोंमें प्रथम मुनि कहा गया है—

विखना वै विष्णुः तज्जा वैखानसाः स्मृताः।
विष्णुवंशजश्च विखना मुनीनां प्रथमो मुनिः॥

इस प्रकार विखना शब्दसे साक्षात् नारायण, नारायणके नाभिकमलसे समुद्भूत सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा विखना मुनिका बोध होता है। सारांशरूपमें यह समझा जा सकता है कि भगवान् नारायण ही सर्वप्रथम विखनाके रूपमें आविर्भूत हुए, उस समय वे मुनिरूपमें थे, इसीलिये **'मुनीनां प्रथमो मुनिः'** कहे गये हैं।

भगवान् नारायणने अपने मनके खननके द्वारा विशेष रूपसे जिसे उत्पन्न किया, वे मुनियोंमें प्रथम विखना मुनि कहलाये—

विखना इति प्रोक्तो मनसः खननात् सुतः।
ब्रह्मणः सुविशेषेण मुनीनां प्रथमो मुनिः॥

महाभारत शान्तिपर्वमें स्पष्ट रूपसे कहा गया है कि आप्तकाम पूर्णकाम भगवान् नारायणने लीला करनेके लिये सृष्टिकी इच्छा की और ध्यानयोगके द्वारा अपने ही आत्मतत्त्वका खनन करके जिस मुनिश्रेष्ठको आविर्भूत किया, वे ही विखना मुनि कहलाये।

खननका अर्थ है—वेदान्ततत्त्वकी मीमांसा। वेदोंका जो निगूढ़ अर्थ है, उसका विशेष रूपसे खनन करनेके कारण अर्थात् तत्त्वबोधकी मीमांसा करनेके कारण ही हरिका विखना नाम पड़ा—

वेदान्ततत्त्वमीमांसाखननं कृतवान् हरिः।
नाम्ना विखनसं चक्रे तत्पदान्वर्थयोगतः॥

विखनाकी परम्परामें उत्पन्न होनेवाले, विखनाके धर्मको माननेवाले परवर्ती सभी वैष्णव वैखानस कहलाये। ये गृहस्थ धर्म माननेवाले किंतु मुनिवृत्ति धारणकर प्रायः वैष्णवादि दिव्य देशोंमें निवास करते हैं।

विखनामुनिका ध्यान-स्वरूप

विखना मुनिके नामपर ही वैखानस आगम यह नाम पड़ा है। ये सृष्टिके आदिमें विद्यमान थे, इस कारण वैखानस आगम अत्यन्त प्राचीन है। महामुनि विखना वैखानस धर्म तथा वैखानस आगमके आदि प्रवक्ता आचार्य हैं। भगवान् विष्णुने ही विखनारूप धारणकर वैखानस धर्मका उपदेश दिया और इन्होंने ही विष्णुप्रोक्त जिन वैष्णव सिद्धान्तोंका प्रवर्तन किया, वे ही वैखानस आगमके नामसे प्रसिद्ध हुए। भगवान् नारायणके मन्दिरके दक्षिण भागमें इनके मन्दिरकी स्थापनाका विधान निर्दिष्ट है। भगवान् लक्ष्मी-वेंकटेशके समान ही इनकी भी नित्य समूर्तार्चना होती है।

वैष्णवागमोंमें इनका मन्त्र इस प्रकार निर्दिष्ट है—

ॐ वैखानसायाऽच्युतसंश्रयाय तपोग्रनिष्ठाय च ब्रह्मदर्शिने स्वाहा।

ॐ विखनसे नमः। ॐ तपोयुक्ताय नमः। ॐ सिद्धिदाय नमः। ॐ सर्वदर्शिने नमः।

इनके ध्यान स्वरूपमें बताया गया है कि भगवान् विखना मुनि साक्षात् नारायण किंवा ब्रह्माके समान स्वरूपवाले हैं। वे चतुर्भुज हैं। स्फटिकके समान उनका उज्ज्वल वर्ण है। वे जटाधारी हैं। उनके चार हाथोंमें शंख, चक्र, ज्ञान तथा वरदमुद्रा प्रदर्शित है। वे कमण्डलु, अक्षमाला तथा दण्ड आदि धारण करते हैं। उनका बीजमन्त्र 'विं' है। वे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे सुशोभित रहते हैं। उनकी मुखमुद्रा अत्यन्त सौम्य तथा प्रसन्न है। उनके शिरोमण्डलके चतुर्दिक् एक दिव्य देदीप्यमान आभामण्डल प्रकाशित होता रहता है। वे विष्णुपूजामें विशारद हैं। दिव्य आसनपर समासीन रहते हैं। वे साक्षात् तपकी मूर्ति हैं। सब प्रकारकी सिद्धियोंको देनेवाले हैं। सर्वज्ञ हैं और जगत्के कल्याणमें लगे रहते हैं। उनकी उपासनासे लक्ष्मीनारायणका अहैतुकी अनुग्रह सहज ही प्राप्त हो जाता है।*

महामुनि विखनाके प्रादुर्भावका आख्यान

महर्षि मरीचिविरचित आनन्दसंहितामें विखना मुनिके आविर्भावकी एक रोचक कथा प्राप्त होती है, जिसका सारांश इस प्रकार है—

एक बार आप्तकाम पूर्णकाम भगवान् नारायणने लीला करनेकी इच्छासे विश्वकी सर्जनाका संकल्प किया और इस कार्यके लिये उन्होंने चतुर्मुख ब्रह्माका स्मरण किया। स्मरण करते ही ब्रह्मा उपस्थित हो गये। तब भगवान्ने उनसे कहा—

ब्रह्मन्! धर्मकी रक्षाके लिये और वेदादि शास्त्रोंकी प्रतिष्ठाके लिये मैं संसारमें अवतरण करना चाहता हूँ अतः आप चराचर जगत्की सृष्टि करें। इस समय कलिका प्रभाव है, संसारके प्राणी अत्यन्त दुखी हैं, आलस्ययुक्त हैं, अल्प सत्त्व एवं बलवाले हैं। मनुष्योंकी बुद्धि भी अल्प हो गयी है, वे पथभ्रष्ट हैं, उन्हें कर्तव्याकर्तव्यका विवेक नहीं है। वे मेरे पर, व्यूह, विभव तथा व्यापक आत्मरूपको नहीं जानते हैं, अतः उन दुखी प्राणियोंपर अनुकम्पा करनेके लिये, उनका उद्धार करनेके लिये, विशेष रूपसे भक्तोंको सहज ही प्राप्त होनेके लिये 'अर्चावतार' रूपसे मैं देवी लक्ष्मीके साथ अवतार धारण करूँगा। इसलिये हे पद्मसम्भव! मेरी अर्चापूजा करनेके लिये सर्वप्रथम आप एक श्रेष्ठ मुनिकी रचना करें।

मदर्चायै सृज ब्रह्मन् सृष्ट्यादौ मुनिसत्तमम्।

भगवान् नारायणसे ऐसी आज्ञा प्राप्तकर चतुर्मुख ब्रह्माने क्षणभर विचार किया और वैसा करनेका संकल्प लिया, किंतु वे वैसा करनेमें असमर्थ रहे और उन्होंने भगवान्से कहा—प्रभो! आप जिस प्रकारके मुनिश्रेष्ठकी सर्जना चाहते हैं, वैसा करना मुझसे सम्भव नहीं हो पा रहा है, अतः आप मुझे क्षमा करें।

---

* हेमाच्छादं स्फटिकसदृशं विध्यूडूत्पत्तिभाजं। दिव्यानाथं रुरुमयमहावाहनं दोष्चतुष्कम्।
विं बीजन्तं विखनसमहं प्राप्तवन्तं भजामि॥

इसी प्रकार एक अन्य ध्यानरूप इस प्रकार निर्दिष्ट है—

कूर्मासने समासीनं कुण्डलाद्यैर्विभूषितम्। श्रावणे श्रवणर्षेयं विष्णुपूजाविशारदम्॥
कमण्डल्वक्षमालाभिर्दण्डेन सुविराजितम्। ध्रुवस्य दक्षिणे भागे विखनो मुनिमाश्रये॥

तब देवदेव श्रीहरिने स्वयं ही अपने आत्मस्वरूप भगवान् विखनाको उत्पन्न किया, जो महान् तेजस्वी तथा शुद्धसत्त्वसम्पन्न थे। तदनन्तर नारायणकी आज्ञासे ब्रह्माने सृष्टिके विस्तारका संकल्प लिया। प्रथम सांकल्पिक सृष्टिसे सनकादि ब्रह्मवादी पुत्रोंका आविर्भाव हुआ, किंतु ज्ञानातिशय-वैभवके कारण वे निवृत्तिमार्गके उपासक हुए। इस कारण उनसे सृष्टिका विस्तार नहीं हुआ। ब्रह्माने पुनः सृष्टि-कार्यको बढ़ानेमें सहायक नव (प्रकारान्तरसे दस) पुत्रोंको उत्पन्न किया। ये ब्रह्माजीके हृदय, सिर आदि अंगोंसे उत्पन्न हुए। अंगोंसे उत्पन्न ब्रह्माजीके ये ९ पुत्र गुणों, शक्ति-सामर्थ्य तथा तपोबलमें ब्रह्माजीके ही समान थे, इसलिये 'नव ब्रह्माण' भी कहलाते हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—१. दक्ष, २. मरीचि, ३. भृगु, ४. अंगिरा, ५. अत्रि, ६. पुलस्त्य, ७. पुलह, ८. वसिष्ठ, ९. क्रतु।

ये सभी नव ब्रह्माण तथा सनकादि मुनीश्वर भगवान् विखना मुनिके शिष्य बने। इन सभीको भगवान् विखनाने ही ज्ञानका उपदेश दिया। ब्रह्माजीने उन विखनामुनिको आगे करके भगवान् नारायणसे कहा—

हे देवदेव! हे जगन्नाथ! आपके प्रभावसे इन मुनिश्रेष्ठका सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ है। ये मेरे सनकादि तथा दक्षादि सभी पुत्रोंमें ज्येष्ठ हैं, पुरुषोत्तम हैं, वैष्णवोंमें अग्रगण्य हैं और मुनियोंमें आदि मुनि हैं। विशेष रूपसे खननप्रक्रियाद्वारा ये प्रादुर्भूत हैं, इसलिये इनका विखना ऐसा नाम प्रसिद्ध होगा—

मत्पुत्राणाञ्च सर्वेषामग्रजः पुरुषोत्तमः।
वैष्णवेष्वग्रजः श्रेष्ठो मुनीनां प्रथमो मुनिः॥
विशेषखननाज्जातो विष्णोर्वैखानसस्तथा।

ये विखनामुनि भृगु आदि महर्षियोंका उपनयन करके उन्हें सावित्रीका उपदेश देंगे और परमात्मतत्त्व-विष्णुतत्त्वका सर्वप्रथम उपदेष्टा होनेसे 'गुरु' इस पदसे अभिहित होंगे। इसलिये ये आदि गुरु, आदि आचार्य, आदि वैष्णव तथा आदि उपदेष्टा कहलायेंगे—

परब्रह्मोपदेष्टासावयमेव गुरुः स्मृतः।

ब्रह्माजी पुनः बोले—हे जनार्दन! मेरे द्वारा जो यह चराचर जगत्की सृष्टि हुई है, उसमें अखिल जगत्के कल्याणके लिये विशेष रूपसे भक्तोंका कल्याण करनेके लिये आप भी अवतार धारण करें—

भवानवतरत्वत्र मम सृष्टौ जनार्दन।

हे विभो! आपके द्वारा शुद्ध सत्त्वसम्पन्न, ऋषिश्रेष्ठ महातेजस्वी इन विखनामुनिका आविर्भाव हुआ है, हे प्रभो! ये आपके कार्योंको करनेमें समर्थ हैं—**'त्वत्कर्मकरणक्षमः।'**

ब्रह्माजीके वचनोंको सुनकर भगवान् इन विखना मुनिसे बोले—

हे मुनिश्रेष्ठ! मैं जगत्में लक्ष्मीवेंकटेश नामसे अवतार धारण करूँगा और मेरी आराधना-विधिका प्रकाश करनेके लिये मेरे ही द्वारा आपका सृजन हुआ है। अतः आप स्वयं वैष्णव-धर्मका आचरण करते हुए वैष्णव पूजा-उपासना तथा आचार-परम्पराका प्रवर्तन कीजिये। आपद्वारा प्रवर्तित होनेके कारण ही वैष्णव धर्म आपके विखना नामके कारण वैखानस धर्म कहलायेगा। आपके द्वारा उपदिष्ट भृगु आदि महर्षि जो नारायणपरायण हैं, आपके द्वारा प्रवर्तित वैखानस धर्मका आगे विस्तार करेंगे। ऐसा कहकर भगवान् विष्णुने विखनाको सम्पूर्ण वैष्णव धर्मका उपदेश दिया और कहा—यह वैष्णव धर्म श्रुतिसम्मत है और इस धर्मका अनुवर्तन करनेवाले भागवत कहलायेंगे—

त्वदाज्ञयैव भृग्वाद्या नारायणपरायणाः।
वदन्ति परमं धर्मं वैष्णवं श्रुतिसम्मतम्।
तद्धर्मनिरता ये तु ते वै भागवताः स्मृताः॥

विखनामुनिप्रणीत वैखानसशास्त्र

भगवान् नारायणकी आज्ञा पाकर विखनामुनिने लोककल्याणार्थ भगवान् विष्णुद्वारा प्रदिष्ट अर्थको लेकर परम हितकारी वैष्णवशास्त्रका प्रणयन किया, जो वैखानस कल्पसूत्र या वैखानसशास्त्र कहलाता है। यह सूत्रोंमें उपनिबद्ध है। विखनामुनिने वेदकी वैखानस शाखाका आश्रयणकर इन सूत्रोंका निर्माण किया। कृष्ण यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाको विद्वानोंने वैखानस शाखा बतलाया है, इसका प्राचीन नाम औखेय शाखा है, इस विषयमें एक श्लोक उपलब्ध है—

येन वेदार्थं विज्ञाय लोकानुग्रहकाम्यया।
प्रणीतं सूत्रमौखेयं तस्मै विखनसे नमः॥

विखनामुनिकी शिष्य-परम्परा और उनकी रचनाएँ

आदिमुनि विखनाकी शिष्य-परम्परामें चार महर्षियोंका विशेष स्थान है, जिन्होंने विखनामुनिसे उपदिष्ट होकर वैखानस आगमोंका निर्माणकर उनका विशेषरूपसे विस्तार

किया और इसका प्रचार-प्रसार किया। ये विखनाके शिष्य कहे गये हैं और वैखानसोंके ये ही पूर्वज भी हैं—

शिष्याः विखनसः प्रोक्ताः सर्वशास्त्रार्थपारगाः।
विखनसानां भृग्वाद्या वंशकर्तार ईरिताः॥

इन महर्षियोंके नाम इस प्रकार हैं—

(क) भृगु, (ख) अत्रि, (ग) कश्यप, (घ) मरीचि।

वैखानस समाजमें इन चार महर्षियोंकी विशेष महिमा और स्थान है तथा इनके प्रति विशेष आदरबुद्धि है।

महामुनि विखनाने जिस वैखानस कल्पसूत्रका प्रणयन किया, उसीको चार रूपोंमें विभक्तकर इन चार महर्षियोंने उसका और अधिक विस्तार किया—

चतुर्धाव्यष्टिरूपेण तत्सूत्रं चाभवत्पुनः।
आत्रेयं भार्गवं चैव मारीचं काश्यपं त्विति॥

इन महर्षियोंकी रचनाओंका संक्षेपमें दिग्दर्शन इस प्रकार है—

(क) महर्षि अत्रिने चार तन्त्रोंका निर्माण किया, जो १. पूर्वतन्त्र, २. आत्रेयतन्त्र, ३. विष्णुतन्त्र तथा ४. उत्तरतन्त्रके नामसे विख्यात हुए।

(ख) महर्षि भृगुने खिल तन्त्र, पुरा तन्त्र आदि तेरह अधिकार ग्रन्थोंका प्रणयन किया।

(ग) महर्षि कश्यपने तीन काण्डोंकी रचना की, जिनके नाम इस प्रकार हैं—

१. सत्यकाण्ड, २. तर्ककाण्ड और ३. ज्ञानकाण्ड।

(घ) महर्षि मरीचिने आठ संहिताओंका निर्माण किया, यथा—१. जयसंहिता, २. आनन्दसंहिता, ३. संज्ञानसंहिता, ४. वीरसंहिता, ५. विजयसंहिता, ६. विजितसंहिता, ७. विमलसंहिता तथा ८. ज्ञानसंहिता।

इस समग्र साहित्यका मूल महामुनि विखनाप्रणीत वैखानससूत्र ही है—

एतेषां चतुर्विधानां मूलं तद्वैखानससूत्रम्।
तां तु वैखानसीं शाखामेतानध्यापयन्मुनिः।

प्राचीन कालसे आजतक जो भी भगवान् नारायणकी पूजा, अर्चना, उत्सवादि, मन्दिर-निर्माण, प्रतिष्ठा, यज्ञ-यागादि तथा आचार-विचार एवं दैनन्दिन-कृत्य वैखानस समाजमें होते हैं, वे इन्हीं ग्रन्थोंके आधारपर होते हैं। इसीलिये वैखानस समाजमें इन ग्रन्थोंकी वेदवत् प्रतिष्ठा है।

आचार्य भृगुने प्रक्रियाधिकारमें बताया है कि आदि सृष्टिमें जब भगवान् नारायणने स्वयं अपने वैष्णव धर्मके प्रवर्तनके लिये चतुर्भुज विखनामुनिको अपने अन्तस्से प्रादुर्भूत किया तो उन्होंने अपना दिव्य उपदेश नैमिषारण्य तीर्थमें विखनामुनिको प्रदान किया। वैखानस आगमके ग्रन्थोंमें यह स्पष्ट निर्देश है कि विखनामुनि नैमिषारण्यमें निवास करते थे। यहाँ तपस्या करके उन्होंने वैखानस शास्त्रका निर्माण किया और अपने भृगु आदि शिष्योंको यहींपर उपदेश दिया।

वैखानस आगमका साहित्य

वैखानसकल्पसूत्र तथा भृगु आदि महर्षियोंके ग्रन्थ वैखानस आगमके आर्षग्रन्थ हैं। उपनिषदों, स्मृतियों आदिमें इसके सिद्धान्त यत्र-तत्र व्याप्त हैं। बौधायन, हारीत, सौभरि आदि आचार्योंने इसका विस्तार किया है। पुराणोंमें तो अत्यन्त वृहद् रूपसे इसका प्रतिपादन हुआ है। स्कन्द, ब्रह्माण्ड, वराह आदि पुराणोंमें तो वैखानस आगमके परम उपास्य भगवान् लक्ष्मी-वेंकटेशकी अवतार-लीलाओंका बड़ा ही मनोरम चित्रण हुआ है, अनेकों सुन्दर आख्यान वहाँ वर्णित हैं। साथ ही महाभारत आदिमें भी ये बातें निर्दिष्ट हैं।

परवर्ती विशिष्ट आचार्योंमें नृसिंहवाजपेयी यतिन् तथा श्रीनिवासमखिन् आदिका नाम विशेष महत्त्वका है। नृसिंहवाजपेयी यतिन्ने प्रतिष्ठाविधिदर्पण, भगवदर्चाप्रकाश तथा ब्रह्मोत्सवानुक्रमणिका आदि ग्रन्थोंका निर्माण किया। श्रीनिवासमखिन्का बादरायणके ब्रह्मसूत्रपर लिखा भाष्य लक्ष्मीविशिष्टाद्वैत भाष्यके नामसे प्रसिद्ध है। इन्होंने 'वैखानसमहिमामञ्जरी' 'तात्पर्यचिन्तामणि' 'दशविधहेतु-निरूपण' आदि ग्रन्थोंका निर्माण किया। उत्तरभूरि वीरराघवाचार्यका 'वैखानसविजय' ग्रन्थ प्रसिद्ध है। संस्कृतके साथ ही तमिल भाषामें भी अनेक प्रधान ग्रन्थोंका निर्माण हुआ है।

वैखानस आगमके मुख्य उपास्य देव

वैखानस आगमके परम उपास्य देव भगवान् श्रीलक्ष्मीवेंकटेश हैं। वेंकटेशभगवान्का ही अपर नाम बालाजी है। कलियुगके आर्तप्राणियोंका उद्धार करनेके लिये उन्होंने तिरुपति-तिरुमलै-वेंकटाद्रि-वेंकटाचलपर बालाजी नामसे अवतार धारण किया।

बलात्कारके समय क्या करें ?

(महात्मा गांधी)

एक बहनने अपने पत्रमें मुझसे नीचे लिखे सवाल पूछे हैं—

१. कोई दैत्य-जैसा मनुष्य राह चलती किसी बहनपर हमला करके उसपर बलात्कार करनेमें सफल हो जाय, तो क्या उस बहनका सतीत्व भंग हुआ माना जायगा?

२. क्या वह बहन तिरस्कारकी पात्र है? उसका बहिष्कार किया जा सकता है?

३. ऐसे संकटमें फँसी हुई स्त्री क्या करे? जनता क्या करे?

तिरस्कार नहीं, दयाकी पात्र

मैं मानता हूँ कि दर असल तो इसे सतीत्व-भंग ही कहना होगा, लेकिन जिसपर सफल बलात्कार किया जाय, वह स्त्री किसी भी तरह तिरस्कार या बहिष्कारकी पात्र नहीं, वह तो दयाकी पात्र है। उसकी गिनती घायलोंमें होनी चाहिये; और इसलिये घायलोंकी सेवाकी तरह उसकी भी सेवा करनी चाहिये।

सच्चा सतीत्व-भंग तो उस स्त्रीका होता है, जो उसमें सम्मत हो जाती है; लेकिन जो विरोध करते हुए भी घायल हो जाती है, उसके सम्बन्धमें सतीत्व-भंगकी अपेक्षा यह अधिक उचित है कि उसपर बलात्कार हुआ। 'सतीत्व-भंग' या व्यभिचार शब्द बदनामीका सूचक है, इसलिये वह बलात्कारका पर्यायवाची नहीं माना जा सकता। जिसका सतीत्व बलात्कारपूर्वक नष्ट किया गया है, उसको किसी भी तरह निन्दनीय न माना जाय, तो ऐसी घटनाओंको छिपानेका जो रिवाज पड़ गया है, वह मिट जाय। यदि मिट जाय, तो खुले दिलसे ऐसी घटनाओंके विरुद्ध ऊहापोह कर सकेंगे।

अगर अखबारोंमें इन घटनाओंके खिलाफ ठीक-ठीक आवाज उठायी जाय तो छेड़खानी बहुत कुछ रुक सकती है।

आज शहरोंमें रहनेवाली प्रत्येक स्त्रीके सामने यह खतरा तो है ही, और इसीलिये पुरुषोंको इसके सम्बन्धमें चिन्तित रहना पड़ता है। इसलिये मेरी सलाह तो यह है कि डरकर नहीं, बल्कि सावधानीके विचारसे स्त्रियोंको गाँवोंमें जाकर बस जाना चाहिये और वहाँ गाँवोंकी कई तरहसे सेवा करनी चाहिये। गाँवोंमें खतरेकी कम-से-कम सम्भावना है। यह याद रखना होगा कि गाँवोंमें धनवान् बहनोंको सादगी और गरीबीसे रहना पड़ेगा। अगर वे वहाँ कीमती गहने और कपड़े पहनकर अपने धनका प्रदर्शन करेंगी तो एक संकटसे बचकर दूसरेमें जा पड़ेंगी और हो सकता है कि देहातमें उन्हें एकके बदले दो-दो संकटोंका सामना करना पड़े।

स्त्रियाँ निर्भय बनें

लेकिन असल चीज तो यह है कि स्त्रियाँ निर्भय बनना सीख जायँ। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि जो स्त्री निडर है और जो दृढ़तापूर्वक यह मानती है कि उसकी पवित्रता ही उसके सतीत्वकी सर्वोत्तम ढाल है, उसका शील सर्वथा सुरक्षित है। ऐसी स्त्रीके तेजमात्रसे पशुपुरुष चौंधिया जायगा और लाजसे गड़ जायगा।

इस लेखको पढ़नेवाली बहनोंसे मेरी सिफारिश है कि वे अपने अन्दर हिम्मत पैदा करें। परिणाम इसका यह होगा कि वे भयसे छुटकारा पा जायँगी और निर्भय रह सकेंगी। वे स्त्रियोंमें पायी जानेवाली थरथराहट या कम्पनका त्याग कर देंगी। यह कोई नियम नहीं कि हर अनजान व्यक्ति पशु बन ही जाता है। बेशरमीकी इस हदतक जानेवाले लोग कम ही होते हैं। सौमें बीस ही साँप जहरीले होते हैं और बीसमें भी डँसनेवाले तो इने-गिने ही होते हैं। जबतक कोई छेड़े या सताये नहीं, साँप हमला नहीं करता, लेकिन डरपोकको इस ज्ञानसे कोई लाभ नहीं होता। वह तो साँपको देखते ही थर-थर काँपने लगता है। अतएव जरूरत तो यह है कि हर एक स्त्री निर्भय बननेकी शिक्षा प्राप्त करे। माता-पिताओं

और पतियोंका काम है कि वे उन्हें यह शिक्षा दें। इस शिक्षाको प्राप्त करनेका सबसे सरल उपाय तो ईश्वरमें आस्था रखना है। अदृश्य होते हुए भी वह हर एककी रक्षा करनेवाला अचूक साथी है। जिसमें यह भावना उत्पन्न हो चुकी है, वह सब प्रकारके भयोंसे मुक्त है।

निडरता या आस्थाकी यह शिक्षा एक दिनमें नहीं मिल सकती। अतएव यह भी समझ लेना चाहिये कि इस दरम्यान क्या किया जा सकता है। जिस स्त्रीपर इस तरहका हमला हो, वह हमलेके समय हिंसा-अहिंसाका विचार न करे। उस समय अपनी रक्षा ही उसका परम धर्म है। उस वक्त जो साधन उसे सूझें, उनका उपयोग करके वह अपनी पवित्रताकी और अपने शरीरकी रक्षा करे। ईश्वरने उसे नाखून दिये हैं, दाँत दिये हैं और ताकत दी है। वह इनका उपयोग करे और करते-करते मर जाय। मौतके भयसे मुक्त हर एक पुरुष या स्त्री स्वयं मरके अपनी और अपनोंकी रक्षा करे। सच तो यह है कि मरना हमें पसन्द नहीं होता। इसलिये आखिर हम घुटने टेक देते हैं। कोई मरनेके बदले सलाम करना पसंद करता है, कोई धन देकर जान छुड़ाता है, कोई मुँहमें तिनका लेता है और कोई चींटीकी तरह रेंगना पसन्द करता है। इसी तरह कोई स्त्री लाचार होकर जूझना छोड़ पुरुषकी पशुताके वश हो जाती है।

ये बातें मैंने तिरस्कारवश नहीं लिखीं; केवल वस्तु-स्थितिका ही जिक्र किया है। सलामीसे लेकर सतीत्व-भंगतककी सभी क्रियाएँ एक ही चीजकी सूचक हैं। जीवनका लोभ मनुष्यसे क्या-क्या नहीं कराता? अतएव जो जीवनका लोभ छोड़कर जीता है, वही जीवित रहता है। **'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** इस मन्त्रके अर्थको हर एक पाठक समझ लें और कण्ठाग्र कर लें।

दर्शक पुरुष क्या करे?

यह तो स्त्रीका धर्म हुआ, लेकिन दर्शक पुरुष क्या करे? सच पूछो तो इसका जवाब मैं ऊपर दे चुका हूँ, वह दर्शक न रहकर रक्षक बनेगा। वह खड़ा-खड़ा देखेगा नहीं। वह पुलिसको ढूँढ़ने नहीं जायगा। वह रेलकी जंजीर खींचकर अपने-आपको कृतार्थ नहीं मानेगा। अगर वह अहिंसाको जानता होगा तो उसका उपयोग करते-करते मर मिटेगा और संकटमें फँसी हुई बहनको उबारेगा। अहिंसासे नहीं तो हिंसाद्वारा बहनकी रक्षा करेगा। अहिंसा हो या हिंसा, आखिरी चीज तो मौत है। मेरे समान बुढ़ापेके कारण अशक्त और बिना दाँतोंवाला बूढ़ा अगर ऐसे समय यह कहकर छूटना चाहे कि 'मैं तो कमजोर हूँ, यहाँ मैं क्या कर सकता हूँ? मुझे तो अहिंसक ही रहना है।' तो उसी क्षण उसका महात्मापन नष्ट हो जायगा और वह निन्दनीय बन जायगा; क्योंकि अगर ऐसे समय वह मर-मिटनेका निश्चय कर ले और दोनोंके बीच जा खड़ा हो तो बहनकी रक्षा तो हो ही जायगी, वह उसके सतीत्व-भंगका साक्षी भी न रहेगा।

इन दर्शकोंके सम्बन्धमें भी अगर वातावरण ऐसा बन जाय कि हिन्दुस्तानका कोई भी आदमी किसी भी स्त्रीकी लाज लुटते देख नहीं सकता तो कोई भी हिन्दुस्तानी स्त्रीको हाथ लगाना भूल जायगा। किंतु शर्मके साथ यह कबूल करना पड़ता है कि आज हमारे वातावरणमें यह तेज नहीं है। अगर हमारी इस शर्मको मिटानेवाले लोग देशमें पैदा हो जायँ तो बड़ा काम हो।

(कल्याण वर्ष १६ संख्या ९ से)

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जहाँ स्त्रियोंका आदर किया जाता है, वहाँ देवता रमण करते हैं और जहाँ इनका अनादर होता है, वहाँ सब काम निष्फल होते हैं। **[मनुस्मृति]**

कहानी—

सतीका शाप

(श्रीरामेश्वरजी टांटिया)

पिछले वर्ष[1] सौराष्ट्रकी यात्राके समय वहाँके ऐतिहासिक शहर और किसी समयकी गुर्जर देशकी राजधानी अन्हिलवाड़ पाटन भी गया।

आजसे १०००-१२०० वर्ष पहले यह बहुत बड़ा और भव्य शहर रहा होगा, परंतु इस समय तो टूटे-फूटे खण्डहर, कुछ पुराने मन्दिर और कुएँ-बावड़ी बच गये हैं। अधिकांश पाटनवासी रोजगार-धन्धेके लिये अहमदाबाद, सूरत और बड़ौदाकी तरफ चले गये हैं, इसलिये अब यह एक छोटा-सा कस्बामात्र रह गया है।

मुंशीजी[2]के 'पाटनका प्रभुत्व' और 'गुजरातके नाथ' के कोट्यधीश सेठ सज्जन मेहता और मुंजाल मेहताके महल भी बड़े-बड़े भयावने खण्डहरोंमें बदल गये हैं।

वहाँपर जानेवाले पर्यटकोंको एक विशाल तालाब अवश्य दिखाया जाता है, इसके चारों तरफ पक्का पुश्ता बँधा हुआ है। चार बड़ी-बड़ी कलात्मक मकराने पत्थरोंकी छतरियाँ हैं। घाटोंकी सीढ़ियाँ जैसलमेरके लाल-पीले पत्थरोंसे मढ़ी हुई हैं। यद्यपि वर्षाका मौसम था, परंतु तालाबमें पानी बिल्कुल नहीं था। चारों तरफ कुछ गाय-भैंसें घूम-फिर रही थीं।

मैंने गाइडसे इसके बारेमें पूछा तो वह कुछ उदासी-भरे लहजेमें कहने लगा कि यही दिखानेके लिये तो मैं आपको यहाँ लाया हूँ।

इस तालाबके चारों तरफ कंकरीला मैदान है, इसलिये वर्षाके दिनोंमें इसमें अथाह पानी आता है, परंतु थोड़ी देरमें ही सारा जल विलय हो जाता है। बड़े-बड़े इंजीनियरोंने इसकी जाँच की, पेंदेमें बहुत-सी सीमेन्टकी ढलाई की, मजबूत पत्थर जड़े गये, पर फल कुछ भी नहीं हुआ। यहाँ इसका नाम 'शापित तालाब' है। इसके पीछे एक ऐतिहासिक कथा है।

आजसे ८५० वर्ष पहले गुजरातमें एक प्रसिद्ध राजा सिद्धराज जयसिंहका राज्य था। वे अपने शौर्य और दानशीलताके लिये प्रसिद्ध थे। मुंजाल मेहता-जैसा प्रतापी उनका प्रधानमन्त्री तथा काकभट्ट-जैसा प्रसिद्ध योद्धा उनका सेनापति था। एकसे लेकर ग्यारहतक ध्वजावाले वहाँ कई सेठ थे। (एक ध्वजाकी हैसियत एक करोड़ रुपये थी)।

जब जयसिंह छोटा-सा बच्चा था, तभी उसके पिता कर्णदेवका देहान्त हो गया। माता मीनल देवी अत्यन्त चतुर, विदुषी परंतु दुर्धर्ष थी। उनके कड़े नियन्त्रणमें रहकर जयसिंह अपने समयका प्रसिद्ध युद्ध-विशारद हुआ। गुजरातके नाथके सिवाय उसे सिद्धराज भी कहा जाने लगा। पाटनकी प्रभुता गुजरातके सिवाय अन्य प्रान्तोंमें भी फैल गयी। कहा जाता है कि रुके हुए पानीका बाँध टूट जाता है, तो फिर वह बड़े वेगसे बढ़ चलता है, किसी भी अवरोध-अटककी परवाह नहीं करता। कुछ ऐसा ही मीनल देवीके देहान्तके बाद हुआ। सिद्धराज जयसिंहके रनिवासमें बहुत ही सुन्दर रानियाँ और दासियाँ थी, परंतु उसके मुसाहिब नित्य नयी सुन्दरियोंकी खोजमें रहते थे। आयुके साथ-साथ राजाकी कामलिप्सा बढ़ती जा रही थी।

जूनागढ़का राजा रा-खेंगार उस समयका अद्भुत वीर था। उसका किला पश्चिम भारतमें नहीं, बल्कि देशके इने-गिने किलोंमेंसे था। उसकी रानीका नाम था राणक देवी, विवाहसे पूर्व ही वह अपनी सुन्दरता और शालीनताके लिये देशभरमें प्रसिद्ध थी, दूर-दूरसे लोग उसका दर्शन करनेके लिये जूनागढ़ आते थे।

जयसिंह उससे विवाह करना चाहता था, परंतु वह हृदयसे रा-खेंगारको चाहती थी। जयसिंहके कड़े अवरोधकी बिना परवाह किये रा-खेंगार उसके साथ विवाह करके उसे जूनागढ़ ले गया था।

मन्त्रियों, सभासदों और सेनाध्यक्षोंके विरोधके बावजूद जयसिंहने एक बड़ी फौज लेकर जूनागढ़के किलेको घेर लिया। जब बहुत दिनोंतक सफलता नहीं मिली और उसकी फौजें थकने लगीं, तब उसने वहाँके

१. यह कहानी बीसवीं सदीके मध्य भागमें लिखी गयी थी। अत: पाठकोंको इसे उसी परिप्रेक्ष्यमें समझना चाहिये।

२. श्रीकन्हैयालाल माणिकलाल मुंशीजी एक प्रसिद्ध गुजराती साहित्यकार एवं राजनेता थे।

किलेदारको मिलाकर किला फतह कर लिया। रा-खेंगार दूसरे साथियोंके साथ बहादुरीसे जूझता हुआ मारा गया।

जिस समय जयसिंह राणकदेवीसे मिलनेके लिये किलेमें पहुँचा, तो वहाँ महलके एक कोनेमें उस सतीके जले हुए शरीरकी राखकी ढेरीमात्र थी। पैरोंमें महावर लगाकर और सोलह शृंगार करके सती अपने पतिके सिरको गोदमें लेकर भस्म हो गयी थी। उसके पैरोंके निशानोंको आजतक हजारों-लाखों सधवा और कुमारी कन्याएँ पूजती हैं। आज भी जूनागढ़में राणक देवीका महल है और वह स्थान भी है, जहाँ वह सती हुई थी। आजतक गुजरात, सौराष्ट्र और राजस्थानमें उसके नामके गीत गाये जाते हैं।

कामी और क्रोधीकी विचार-शक्ति नष्ट हो जाती है। बौखलाया हुआ जयसिंह क्रोधित होकर प्रजाकी बहू-बेटियोंपर और भी अधिक अत्याचार करने लगा। एक दिन उसकी दृष्टि एक गरीब मजदूर टिकूकी पत्नी जस्सोपर पड़ी। उसके मुसाहिबोंने जस्सोको २ पैसे रोजाना मजदूरीकी जगह १० पैसे रोजानाकी मजदूरीका लालच दिया और राजमहलमें दासीके कार्य हेतु ले जानेके उद्देश्यसे उसके लिये कुछ-न-कुछ भेंट-सौगात लाने लगे। वह बेचारी देहाती महिला इन सब कुचालोंको भला क्या समझे! परंतु न जाने क्यों जस्सोके मनमें कुछ अशुभका-सा आभास हुआ।

दो-तीन दिन बाद राजाके सिपाही टिकू और जस्सोको पकड़कर महलमें ले गये। पहले तो उन दोनोंको अलग-अलग हर तरहसे समझाया गया। नाना प्रकारके प्रलोभन दिये गये, परंतु जब वे किसी प्रकार भी राजी नहीं हुए, तो राजाको क्रोध आ गया और उसने टिकूको जस्सोके सामने खड़ा करके कोड़े मारनेकी आज्ञा दी। मारसे टिकू लहूलुहान होकर बेहोशीमें एक ओर लुढ़क गया। मुँहसे खून आता देखकर जस्सोने समझा कि वह मर गया है।

घरसे आते समय जस्सो अपनी चोलीमें एक तेज कटारी ले गयी थी। उसे अपनी छातीमें भोंकते हुए उसने कहा—'हे दुष्ट और कामी राजा! यदि मैं मन, वचन और कर्मसे पवित्र हूँ, तो तुझे शाप देती हूँ कि तेरे इस बड़े तालाबमें एक घड़ा पानी भी नहीं ठहरेगा, चाहे कितनी भी वर्षा हो। लोग जब इस सुन्दर और बड़े तालाबको सूखा देखेंगे, तो तेरे इस दुष्कर्मको याद करके युग-युगतक तुझे शाप देते रहेंगे। यही नहीं, तेरे इस बड़े राज्यको भोगनेवाला वंशधर भी नहीं पैदा होगा।'
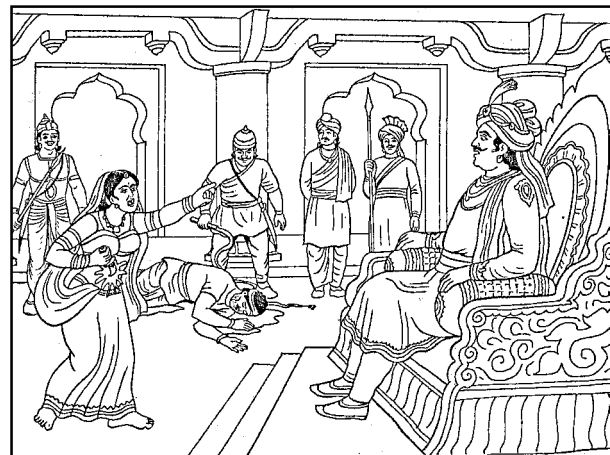
सतीके दोनों शाप सत्य हुए। जयसिंहको पुत्र नहीं हुआ। उसका राज्य उसके प्रतिद्वन्द्वीके पुत्र कुमारपालको मिला। **[प्रेषक—श्रीनन्दलालजी टांटिया]**

पुरुषाणां सहस्रं च सती स्त्री हि समुद्धरेत् । पतिः पतिव्रतानां च मुच्यते सर्वपातकात्॥
नास्ति तेषां कर्मभोगः सतीनां व्रततेजसा । तथा सार्द्धं च निष्कर्मी मोदते हरिमन्दिरे॥

सती अपने सतीत्व-बलसे सहस्रों मनुष्योंका उद्धार करती है। सती स्त्रीका पति सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होता है। पातिव्रत्यके तेजसे सतीके स्वामीको कर्मफलका भोग नहीं करना पड़ता। वह सारे कर्मबन्धनसे छूटकर सतीके साथ भगवान्‌के परमधाममें आनन्दलाभ करता है। **[स्कन्दपुराण]**

गोहत्यामें निमित्त बननेका परिणाम

[भक्त सदन कसाईके पूर्वजन्मकी कथा]

कलियुगमें ही बहुत समय पहले भक्त सदन हुए

हैं, वे जन्मसे कसाई थे; किंतु उन्होंने स्वयं किसी जीवका वध नहीं किया। वे दूसरे कसाइयोंसे मांस खरीद लेते और अपनी दूकानपर तौलकर बेच देते। इस कार्य-व्यापारको भी वे यन्त्रवत् ही करते, रुचिके साथ नहीं। पारिवारिक व्यवसायके रूपमें केवल जीविकोपार्जनके लिये। पूर्वजन्मके संस्कारवश सारा व्यवहार करते हुए भी उनका मन निरन्तर श्रीहरिके चरणोंमें ही रमा रहता। इनकी जिह्वासे अविकल 'हरि-हरि' का ही जप होता रहता।

भगवान्‌की प्रतिज्ञा है, जहाँ उनका नाम-कीर्तन होता है, वहाँ वे सदैव प्रसन्नमुद्रामें विराजमान रहते हैं। सदनके पास भी वे शालग्रामरूपमें विराजमान थे, पर सरल-हृदय भक्त भगवान्‌की उपस्थितिका रहस्य जानते न थे। वे तो उस शालग्राम-शिलाको बाट मानकर उससे मांस तौलते थे।

एक बार एक साधु अकस्मात् उधरसे निकले, उनकी श्रद्धापूर्ण दृष्टिने शालग्रामके स्वरूपको पहचाना। 'मांस-विक्रेताके तराजूका बाट? प्रभु शालग्रामका यह उपयोग? छिः! छिः!!' घृणासे उनका मुख बिचक गया। उन्होंने सदनसे शालग्राम-शिलाकी माँग की। सदनने सोचा—'एक पत्थरके टुकड़ेसे साधु प्रसन्न होते हैं तो मेरा अहोभाग्य! मैं दूसरा पत्थर तराजूमें रख लूँगा।' सदनने साधुको शालग्राम दे दिया।

पर भगवान् भक्तका पार्थक्य कैसे सहते? साधुने शालग्रामकी पूजा की, भोग लगाया, पूरे विधि-विधानका पालन किया। पूजा करने और कसाईके यहाँसे शालग्रामके 'उद्धार' की भावनाके अहंकारसे वे अपनेको महान् समझ बैठे; पर भगवान् तो विधि-विधानसे कहीं अधिक भावनाके भूखे हैं। अहंकारी उपासकसे उन्हें प्रसन्नता नहीं होती, वे तो सरल सहृदय भक्तके प्रेमपर आठ-आठ आँसू बहाकर उसके ही आगे-पीछे फिरते हैं।

उसी रात साधुको स्वप्न हुआ। भगवान्‌ने कहा—'मुझे सदनके ही यहाँ पहुँचा दो। उसके कीर्तनको सुन-सुनकर मेरा रोम-रोम पुलकित होता था। उसका स्पर्श मुझे सुखद शीतल जान पड़ता था। मेरा मन यहाँ बिलकुल नहीं रमता। मुझे अपने भक्त सदनके पास ही वापस ले चलो।' साधु भय और ग्लानिसे अपनेको धिक्कारने लगे। स्वप्नकी बात सुनाते हुए उन्होंने शालग्राम वापस सदनको भेंट कर दिया तथा सदनके भाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए उनके दर्शनसे अपने-आपको कृतकृत्य माना। प्रभुकी इस कृपाका वृत्तान्त सुनकर सदन भी प्रभुके प्रेममें निमग्न हो गये। वे रो-रोकर प्रभुसे अपने दुर्व्यवहारकी क्षमा माँगने लगे। उन्होंने अपने घृणित व्यवसायको तिलांजलि दे दी और पुरुषोत्तमक्षेत्र पुरीकी यात्रापर चल पड़े।

जगन्नाथपुरी अभी दूर थी। मार्गमें दैवयोगसे सदन एक गृहस्थके यहाँ रात्रि व्यतीत करनेकी दृष्टिसे ठहर

गये। हृदयमें हरिनाम था और थी भगवान्‌का दर्शन पानेकी उत्कट इच्छा। उस छोटे परिवारमें पति-पत्नी—दो ही प्राणी थे। सदनका स्वस्थ शरीर तथा रूप-यौवन देखकर उस घरकी मालकिन इनपर आसक्त हो गयी। रात्रिके अन्धकारमें वह इनके कक्षमें आयी और अपनी वासना शान्त करनेकी कुचेष्टा करने लगी। सच्चा भक्त प्रपंचमें कैसे फँस सकता है? सदनजीने दीनतासे कहा—'माताजी! मैं आपका पुत्र हूँ, मुझे क्षमा कीजिये। मैं अभी अपनी यात्रापर चला जाता हूँ।' उस कुलटाने समझा कि यह मेरे पतिके कारण डर रहा है, अतः उसने बाहर आकर सोते हुए अपने पतिका सिर काट डाला और पुनः सदनके पास आकर काम-याचना करने लगी—'देखो यात्री! अब इस घरमें मेरे और तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य नहीं है। मैंने अपने पतिको भी यमलोक भेज दिया है, हमें डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं।' वह सदनकी ओर बढ़ने लगी; पर भक्त सदनपर इसका क्या प्रभाव होता। हताश हो वह पिशाचिनी द्वारपर बैठकर रोने लगी—'हाय! इस यात्रीने मेरे पतिकी हत्या कर दी और अब मुझे पाप-गर्तमें ढकेलना चाहता है।'

ग्रामवासी इकट्ठे हो गये। भक्त सदनके मुखपर न पश्चात्ताप था, न शोक। भगवान् और उनकी कृपामयी लीलाको स्मरण करते हुए वे मौन रहे। अन्तमें उन्हें न्यायाधीशके सम्मुख उपस्थित होना पड़ा। वहाँ भी वे हरि-स्मरणमें ही अनुरक्त रहे। वाणी संसारकी ओरसे मौन हो गयी थी। दण्ड मिला। दोनों हाथ काटकर उन्हें नगरीसे निकाल दिया गया।

प्रभुकी लीलाका गुणगान करते हुए वे पुरीकी ओर चल पड़े। प्रभुका अनुग्रह भी अनेक बार बड़ा रहस्यमय होता है। जगन्नाथपुरीके पुजारीको स्वप्नमें आदेश हुआ कि 'मेरा एक प्रिय भक्त आ रहा है। उसके हाथ कटे हुए हैं। उसे सम्मानपूर्वक ले आओ।'

मन्दिरके लोग सदनके पास पहुँचे और उनसे पालकीमें बैठनेका आग्रह करने लगे। सदनकी समझमें कुछ भी न आ रहा था। 'एक स्थानपर तो हाथ काट लिये गये, दूसरे स्थानपर पालकी आ रही है। जिस भक्तवत्सलको मेरा इतना ध्यान है, उन्हें क्या हाथ कटनेका पता न होगा?' सोचते-सोचते वे प्रभुके ध्यानमें बेसुध हो गये। भक्तलोग उन्हें पालकीमें बैठाकर पुरीकी ओर बढ़ते जा रहे थे।

जगन्नाथपुरी पहुँचकर जब सदनने भगवान्‌को दण्डवत्-प्रणाम किया और उनका नाम-कीर्तन करनेके लिये उन्मत्त हो जैसे ही उन्होंने भुजाएँ ऊपर उठायीं, उनके हाथ पूर्ववत् हो गये और वे ***'हरि हरि बोल, बोल हरि बोल'*** के मधुर स्वरके साथ नृत्य करने लगे। नाम-स्मरण करते-करते ही उन्हें कब निद्रा आ गयी, पता नहीं चला। मनमें एक ऊहापोह उठा था कि 'भगवन्! मेरे हाथ किस अपराधके कारण कटे थे?' अन्तर्यामी प्रभुसे तो हमारी कोई वृत्ति छिपी नहीं है। निद्रामग्न सदनको स्वप्न हुआ—'पूर्वजन्ममें तुम एक सदाचारी ब्राह्मण थे। एक कसाई गायके पीछे दौड़ रहा था। तुमने दोनों भुजाएँ गायके कण्ठमें डालकर उसे रोक दिया। इस जन्ममें वही कसाई उस स्त्रीका पति बना। गाय ही उस स्त्रीके रूपमें जन्मी और पूर्वजन्मका बदला लेनेके लिये उसने उसका गला काटा। तुमने भुजाओंसे गायको रोका था, इस अपराधसे तुम्हारे हाथ कटे।' प्रभुने स्वप्नमें दर्शन दिया। भक्तका समाधान हुआ।

इस प्रकार गोहत्यामें निमित्त बननेके कारण भक्त होते हुए भी सदन कसाईको हाथ कटनेका दण्ड सहन करना पड़ा। इससे यह भी सिद्ध होता है कि किये गये सुकृत या दुष्कृतका फल अवश्य भोगना पड़ता है, भले ही वह किसी भी जन्ममें भुगतना पड़े—'**अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**'

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें १।४७ बजेतक	शुक्र	शतभिषा रात्रिमें १२।४ बजेतक	१९ अगस्त	**अशून्यशयनव्रत चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।१३ बजे।
द्वितीया ,, १२।१० बजेतक	शनि	पू० भा० ,, ११।४ बजेतक	२० ,,	**भद्रा** रात्रिमें ११।११ बजेसे, **मीनराशि** सायं ५।१९ बजेसे।
तृतीया ,, १०।१३ बजेतक	रवि	उ० भा० ,, ९।४७ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** दिनमें १०।१३ बजेतक, **संकष्टी (बहुला) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।४० बजे, **कज्जली तीज, मूल** रात्रिमें ९।४७ बजेसे।
चतुर्थी ,, ८।१ बजेतक	सोम	रेवती ,, ८।१७ बजेतक	२२ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें ८।१७ बजेसे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें ८।१७ बजे।
पंचमी प्रात: ५।४० बजेतक षष्ठी रात्रिशेष ३।१३ बजेतक	मंगल	अश्विनी सायं ६।३९ बजेतक	२३ ,,	**भद्रा** रात्रिमें ३।१३ बजेसे, **ललहीछठ, चन्द्रषष्ठी, चन्द्रोदय** रात्रिमें १०।१० बजे, **मूल** सायं ६।३९ बजेतक।
सप्तमी रात्रिमें १२।४७ बजेतक	बुध	भरणी ,, ४।५९ बजेतक	२४ ,,	**भद्रा** दिनमें २।१ बजेतक, **वृषराशि** रात्रिमें १०।३४ बजेसे।
अष्टमी ,, १०।२३ बजेतक	गुरु	कृत्तिका दिनमें ३।२० बजेतक	२५ ,,	**श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रत।**
नवमी ,, ८।९ बजेतक	शुक्र	रोहिणी ,, १।५० बजेतक	२६ ,,	**मिथुनराशि** रात्रिमें १।११ बजेसे, उदयव्यापिनी रोहिणी मतावलम्बी वैष्णवोंका **श्रीकृष्णजन्मव्रत।**
दशमी सायं ६।८ बजेतक	शनि	मृगशिरा ,, १२।३२ बजेतक	२७ ,,	**भद्रा** दिनमें ७।९ बजेसे सायं ६।८ बजेतक।
एकादशी दिनमें ४।२५ बजेतक	रवि	आर्द्रा ,, ११।३० बजेतक	२८ ,,	**कर्कराशि रात्रिशेष** ४।५९ बजेसे, **जया एकादशीव्रत (सबका)।**
द्वादशी ,, ३।४ बजेतक	सोम	पुनर्वसु ,, १०।४९ बजेतक	२९ ,,	**सोमप्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी ,, २।९ बजेतक	मंगल	पुष्य ,, १०।३२ बजेतक	३० ,,	**भद्रा** दिनमें २।९ बजे रात्रिमें १।५५ बजेतक, **पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रका** सूर्य रात्रिशेष ५।१२ बजेसे, **मूल** दिनमें १०।३२ बजेसे।
चतुर्दशी ,, १।४१ बजेतक	बुध	आश्लेषा ,, १०।४३ बजेतक	३१ ,,	**सिंहराशि** दिनमें १०।४३ बजेतक, **श्राद्धकी अमावस्या।**
अमावस्या ,, १।४५ बजेतक	गुरु	मघा ,, ११।२४ बजेतक	१ सितम्बर	**कुशोत्पाटिनी अमावस्या, मूल** दिनमें ११।२४ बजेतक।

सं० २०७३, शक १९३८, सन् २०१६, सूर्य दक्षिणायन, वर्षा-ऋतु, भाद्रपद शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें २।२१ बजेतक	शुक्र	पू० फा० दिनमें १२।३५ बजेतक	२ सितम्बर	**कन्याराशि** रात्रिमें ७।० बजेतक।
द्वितीया ,, ३।२३ बजेतक	शनि	उ० फा० २।१४ बजेतक	३ ,,	× × × ×
तृतीया सायं ४।५३ बजेतक	रवि	हस्त ,, ४।१८ बजेतक	४ ,,	**तुलाराशि** रात्रिशेष ५।३० बजेसे, **हरितालिकाव्रत** (तीज)।
चतुर्थी ,, ६।४२ बजेतक	सोम	चित्रा सायं ६।४२ बजेतक	५ ,,	**भद्रा** प्रात: ५।४८ बजेसे सायं ६।४२ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी रात्रिमें ८।४२ बजेतक	मंगल	स्वाती रात्रिमें ९।१७ बजेतक	६ ,,	**ऋषिपंचमीव्रत।**
षष्ठी ,, १०।४७ बजेतक	बुध	विशाखा ,, ११।५४ बजेतक	७ ,,	**वृश्चिकराशि** सायं ५।१५ बजेसे, **लोलार्कषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, १२।४२ बजेतक	गुरु	अनुराधा ,, २।२० बजेतक	८ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १२।४२ बजेसे, **मूल** रात्रिमें २।२० बजेसे।
अष्टमी ,, २।२० बजेतक	शुक्र	ज्येष्ठा ,, ४।३१ बजेतक	९ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३१ बजेतक, **धनुराशि** रात्रिमें ४।३१ बजेसे, **राधाष्टमीव्रत।**
नवमी ,, ३।३४ बजेतक	शनि	मूल अहोरात्र	१० ,,	**महानन्दानवमी।**
दशमी रात्रिशेष ४।२२ बजेतक	रवि	मूल प्रात: ६।१९ बजेतक	११ ,,	**महारविवारव्रत, मूल** प्रात: ६।१९ बजेतक।
एकादशी ,, ४।३५ बजेतक	सोम	पू०षा० दिनमे ७।३९ बजेतक	१२ ,,	**भद्रा** दिनमें ४।२९ बजेसे रात्रिशेष ४।३५ बजेतक, **मकरराशि** दिनमें १।१५ बजेसे, **पद्मा एकादशीव्रत (स्मार्त्त)।**
द्वादशी ,, ४।१९ बजेतक	मंगल	उ० षा० ,, ८।२८ बजेतक	१३ ,,	**एकादशीव्रत (वैष्णव), वामनद्वादशी, उत्तराफाल्गुनीका सूर्य** रात्रिमें ११।२२ बजे।
त्रयोदशी रात्रिमें ३।३४ बजेतक	बुध	श्रवण ,, ८।४७ बजेतक	१४ ,,	**कुंभराशि** रात्रिमें ८।४२ बजेसे, **प्रदोषव्रत, पंचकारम्भ** रात्रिमें ८।४२ बजे।
चतुर्दशी ,, २।२२ बजेतक	गुरु	धनिष्ठा ,, ८।३८ बजे	१५ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।२२ बजेसे, **अनन्तचतुर्दशीव्रत।**
पूर्णिमा ,, १२।४९ बजेतक	शुक्र	शतभिषा ,, ८।२ बजे	१६ ,,	**भद्रा** दिनमें १।३६ बजेतक, **पूर्णिमा, महालयारम्भ।**

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवत्पूजाके भावसे धन कमाइये

सप्रेम हरिस्मरण! जगत्‌में सब स्वार्थका ही सम्बन्ध है। वस्तुतः कोई किसीका नहीं है। आपने माता-पिताकी सेवाके लिये धन कमानेकी आवश्यकता बतलायी, सो ठीक है। धन कमाना बुरी बात थोड़े ही है। अच्छी नीयतसे और न्यायपूर्वक धन जरूर कमाना चाहिये, परंतु भाई साहब! यह वास्तवमें हाथकी बात नहीं है। प्रारब्धके अनुसार जैसा होना होगा, होगा। न्याययुक्त चेष्टा कीजिये। भगवान्‌की आज्ञा मानकर—भगवान्‌की पूजाकी बुद्धिसे धन कमानेका प्रयत्न कीजिये। भगवान्‌ने रच रखा होगा तो धन मिल जायगा। न रचा होगा तो नहीं मिलेगा। भगवान्‌के विधानपर संतोष करना चाहिये।

भगवत्प्रेमकी बात मैं क्या लिखूँ। मैं तो प्रेमसे बहुत दूर हूँ। हाँ, सुना है—भगवत्प्रेम बहुत ऊँची वस्तु है। मोक्षतककी इच्छाका त्याग करनेसे उस प्रेमकी प्राप्ति होती है। मैं तो एक श्रीभगवन्नामको जानता हूँ। उसका पूरा महत्त्व तो नहीं जानता—परंतु विश्वास है कि भगवन्नामसे सब कुछ हो सकता है और आपको भी उसीका आश्रय लेनेकी नम्र सलाह देता हूँ।

आप माता-पिताकी सेवाके उद्देश्यसे, इसी कर्मके द्वारा भगवत्पूजनके भावसे भगवन्नामका जप करते हुए धन कमानेका न्याय और सत्ययुक्त प्रयत्न करें और भगवान् फलरूपमें जो कुछ भी दें, उसीको सिर चढ़ायें। शेष प्रभुकृपा।

(२)

पत्नीसे अनुचित लाभ न उठाइये

सप्रेम हरिस्मरण! आपका पत्र मिला। आपने लिखा—'मेरी पत्नी बड़ी बुद्धिमती है, स्वभाव भी अच्छा है। सबके साथ अच्छा बर्ताव भी करती है, परंतु मेरी सब बातें नहीं मानती। कहती है, इस बातको मानना पाप है। मैं उसे पतिव्रता शाण्डिलीका उदाहरण देता हूँ, पर वह उसे स्वीकार नहीं करती। इससे हम दोनोंमें कलह रहती है। मेरी बात मानना पाप है या न मानना। इस विषयमें अपनी राय लिखिये।

इसके उत्तरमें निवेदन है कि पतिव्रता आर्य स्त्रीको निश्चय ही अपने पतिदेवका छायाकी भाँति अनुसरण करना चाहिये। पतिकी बात तो क्या, उसकी प्रत्येक रुचिका आदर करके उसे सिर चढ़ाना चाहिये। अन्यान्य सब धर्मोंको छोड़कर केवल पतिके प्रसन्नता-सम्पादनको ही अपना परम और एकमात्र धर्म मानना चाहिये। पतिके लिये, ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जिसका त्याग पतिव्रता नहीं कर सकती, परंतु केवल इसी सिद्धान्तपर मूर्खताके साथ चिपटे रहनेके दुराग्रहसे काम नहीं चलता। धर्म दो तरहके होते हैं—सामान्य और विशेष। सामान्य धर्म सबपर लागू होता है और विशेष धर्मका विशेष परिस्थितिमें विशेष व्यक्तियोंद्वारा ही धारण होता है। शाण्डिलीजी असाधारण देवी थीं। उन्होंने पातिव्रतके विशेष धर्मका ही अवलम्बन किया था। इससे उनमें ऐसी शक्ति आ गयी थी कि उनके कह देनेमात्रसे सूर्यका उदय होना रुक गया। जो इस प्रकारकी विशेष धर्मयुक्त शक्तिमती देवी हों, वे शाण्डिलीकी तरह पतिदेवको वेश्याके यहाँ ले जायँ तो भी कोई हर्ज नहीं। उनका वह विशेष धर्म उनकी रक्षा करेगा और उनके पतिको भी पाप-कर्मसे बचा लेगा। ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि विशेष धर्मवाली पतिव्रता देवीने पतिकी आज्ञासे पर-पुरुषके पास जाना स्वीकार कर लिया। परंतु जब वह पर-पुरुषके पास पहुँची तो उसके पातिव्रत-तेजसे उस पुरुषका चित्त शुद्ध हो गया और वह उसे माता कहकर चरणोंमें लोट गया। परशुरामने पितृ-भक्तिके विशेष धर्मको ग्रहण करके उनकी आज्ञासे अपनी सगी माता और तीन भाइयोंको मार दिया, परंतु उनके विशेष धर्मने पितासे वरदान दिलवाकर उन चारोंको पुनः जिला दिया और उनको परशुरामके द्वारा मारे जानेकी बात भी याद

नहीं रही, परंतु ये बातें सबके लिये नहीं होतीं। यह अनुकरण करनेकी चीज नहीं है। सामान्य धर्ममें पतिव्रता पत्नीको, पितृभक्त पुत्रको, गुरुभक्त शिष्यको और स्वामिभक्त सेवकको अपने पति, पिता, गुरु और स्वामीकी वहींतककी आज्ञाओंका पालन करना चाहिये, जिनके पालनसे आज्ञा देनेवालोंको पाप न होता हो।

× × × ×

अपनी हानि हो, अपने नरकमें जानेकी सम्भावना हो, वहाँतककी आज्ञा भी मानी जा सकती है; परंतु जिस आज्ञाके पालनसे आज्ञा देनेवालेको नरकमें जाना पड़े, ऐसी अशास्त्रीय आज्ञाको कभी नहीं मानना चाहिये। जैसे पति अपनी पत्नीको यदि पर-स्त्रीसे व्यभिचार करनेमें सहायता देनेकी या पर-पुरुषके साथ व्यवहार करनेकी आज्ञा दे तो उसे कभी नहीं मानना चाहिये। जैसे पिता किसी दूसरेका अहित करनेकी, चोरी-डकैती, खून या व्यभिचार आदिकी आज्ञा दे, अथवा स्वयं चोरी-जारी, हिंसा आदि पापकर्म करता हो और उसमें सहायता करनेकी आज्ञा दे तो उसे नहीं मानना ही कर्तव्य और धर्म है। पापबुद्धि और पाप-चेष्टाका समर्थन करना भी पाप है, फिर पाप करना तो पाप होगा ही। और जो इस प्रकार किसीको—पत्नी, पुत्र, शिष्य या सेवकको पापमें लगायेगा, वह भी प्रेरक और समर्थक होनेसे पापका भागी होगा ही। ऐसी हालतमें उसकी आज्ञा न माननेमें ही उसका और अपना कल्याण है। आपके पत्रसे, जबकि आप शाण्डिलीका उदाहरण देनेकी बात लिखते हैं, ऐसा अनुमान होता है कि आपने अवश्य ही किसी पापकार्य करने या करानेके लिये अपनी धर्मपत्नीको आज्ञा दी होगी और उन्होंने उसे पाप बतलाकर माननेसे इनकार किया होगा। यदि ऐसी बात है तो मेरी समझसे उन्होंने बहुत ठीक किया है और ऐसा ही सबको करना भी चाहिये। और आपको भी उनपर नाराज न होकर अपना सौभाग्य मानना चाहिये और अपनी पत्नीका कृतज्ञ होना चाहिये कि जो आपको पाप-पथपर चलनेसे रोकती हैं। पति-पत्नीका परस्पर सच्चे मित्रका नाता है और मित्रका धर्म है—'मित्रको कुमार्गसे हटाकर सुमार्गपर चलाना।' (***'कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।'*** रा०च०मा० ४।७।४)

पतियोंने, पिताओंने, गुरुओंने और मालिकोंने अपने अधिकारका और शास्त्रकी आज्ञाओंका बड़ा दुरुपयोग किया है और बहुत अनुचित लाभ उठाया है। पतियोंने अपनेको परमेश्वर बतलाकर भोली स्त्रियोंसे अपनी नारकीय पापवासनाकी पूर्तिमें सहायता प्राप्त की, पिताओंने अपनी स्वार्थसिद्धिके लिये पुत्रोंको पाप-पथपर अग्रसर किया, गुरुओंने अपनी निन्दनीय इच्छाओंकी पूर्तिके लिये शिष्य-शिष्याओंको कुमार्गपर चलाया और मालिकोंने अपने जघन्य स्वार्थसाधनके लिये सेवकोंको चोर, डाकू, हिंसक और बदमाश बनाया। आज बड़ोंके प्रति छोटोंका जो अनादर देखा जाता है, उसमें एक कारण यह भी है, जो प्रतिक्रियाके नियमके अनुसार अनिवार्य था।

सचमुच आपकी पत्नी बुद्धिमती हैं और साथ ही आपकी सच्ची हितैषिणी भी हैं। आप उनका उपकार मानिये और उनकी बुद्धिमत्तासे लाभ उठाकर अपने जीवनको पवित्र बनाइये। कभी भी शाण्डिलीजीका उदाहरण देकर उनके द्वारा अपनी पापवासना-पूर्तिकी चेष्टा मत कीजिये। शाण्डिलीजीका आचरण अपवाद है, सर्वसाधारणके लिये नियम नहीं। हाँ, पतिकी पवित्र सेवामें अपने तन-मन-धनका उत्सर्ग कर देना स्त्रीका पवित्र धर्म है और उसका उसे अवश्य पालन करना चाहिये। याद रखना चाहिये, पत्नीकी बुद्धिमें पति परमेश्वर है; परंतु पति अपनेको परमेश्वर समझकर पत्नीको गुलाम समझे—यह सर्वथा अनुचित है। पत्नी अर्धांगिनी है और पतिके द्वारा सदा ही सम्मान तथा सद्व्यवहार प्राप्त करनेकी अधिकारिणी है।

मेरे पत्रमें कुछ कटुता आ गयी हो तो कृपया क्षमा करें। शेष प्रभुकृपा।

कृपानुभूति

भगवान् शिवकी प्रत्यक्ष भक्तवत्सलता

घटना कई वर्ष पहलेकी है। पटना जिलेके एक गाँवमें श्री···नामक एक सज्जन रहते थे, जो भगवान्‌की शिवरूपमें उपासना करते थे। उनके सर्वस्व शिव ही थे। वे जो कुछ कहते, भगवान् शिवसे ही कहते और उनका सारा काम किसी-न-किसी प्रकार चल ही जाता।

उस वर्ष वैशाख या ज्येष्ठ मासमें उनकी पुत्रीका विवाह था। वर-पक्षवालोंने इनसे रकम तिलकके रूपमें तो ली ही थी, साथ ही बारात सजाने, रोशनी, बाजे-गाजे आदिका भी सारा भार इन्हींके जिम्मे कर दिया था।

इन्होंने सब कुछ स्वीकार कर लिया। वरके पिताने जो कुछ कहा, इन्होंने मान लिया और दिन-रात एक करके सारी बातें पूरी कीं। सारा प्रबन्ध हुआ, किंतु विवाहके दिन बाजेका प्रबन्ध न हो सका। उस दिन 'लग्न' अधिक संख्यामें थी, इसीलिये बहुत प्रयत्न करनेपर उन्हें कोई बाजा नहीं मिला। सन्ध्या हो चली और यह भी सूचना मिल गयी थी कि बारातके लोग आ रहे हैं और गाँवके निकट पहुँच रहे हैं। फिर भी बाजेका प्रबन्ध न हो सका। बात छोटी-सी थी, पर उनके लिये तो यह एक बड़ी भारी समस्या हो गयी थी।

गाँववालोंने भी ताना मारते हुए कहा—'आज बिना बाजेके ही बारात श्री···बाबूके द्वार लगेगी। किसीने उनकी भक्तिकी हँसी उड़ाते हुए कहा—'सम्भवतः शिवजी अब भी कोई प्रबन्ध कर दें।'

ये सब बातें उनके लिये असह्य हो उठीं। वे चुपचाप खिसक गये और अपने आराध्यदेवके मन्दिरमें जा पहुँचे। भक्त अपने भगवान्‌के अतिरिक्त और किसके पास जा सकता है। उन्होंने शिवलिंगके समक्ष रो-रोकर कहना प्रारम्भ किया—

'भगवन्! यह कौन-सी लीला कर रहे हैं? आपने सारी व्यवस्था तो कर दी, क्या एक बाजेका प्रबन्ध करना आपके लिये कठिन था। जो कुछ अबतक हुआ है, सब आपने ही तो किया है। मैं तथा मेरे कुटुम्बके लोग तो सब निमित्तमात्र रहे हैं। अब यदि बाजेका प्रबन्ध नहीं हुआ तो मैं मुख दिखलानेयोग्य नहीं रह जाऊँगा। बस, यही आपसे मेरी प्रार्थना—टेक है।'

उधर बारात गाजे-बाजेके साथ गाँवके पास पहुँची; किंतु श्री···लापता हैं। लोगोंने बहुत छान-बीन की, किंतु वे कहीं न मिले। सबको चिन्ता-सी सताने लगी। लोग कहने लगे—'ठीक समयपर ही वे कहाँ चले गये? अब कैसे क्या होगा?' इतनेमें ही किसीको उनकी शिव-भक्तिकी याद हो आयी। अनुमान लगाया गया कि वे शिव-मन्दिरमें होंगे। वास्तवमें खोजनेपर वे मिले भी वहीं।

लोगोंने कहा—'आप यहाँ क्यों पड़े हैं?'

वे बोले—'बाजेका प्रबन्ध जो नहीं कर सका। अब क्या मुख दिखाऊँ?'

उत्तर मिला—'बाजा तो बज रहा है। आप क्यों चिन्ता कर रहे हैं? सम्भवतः बारातवालोंने ही बाजेका प्रबन्ध कर लिया है।'

बाजेका शब्द सुनायी पड़ रहा था, इसीलिये उनको विश्वास करनेमें देर न लगी।

बारात द्वारपर आयी और शुभ लग्नमें विवाह हो गया। बड़ा सुन्दर बैंड बाजा था। लोग मुग्ध थे। ऐसा बाजा पहले उन लोगोंने नहीं सुना था। विवाह सम्पन्न हुआ। अब आया बारातवालोंको भोजन करानेका समय। इससे पहले बारातमें पूरी-मिठाई भेज दी गयी थी, उस समय सबकी अलग-अलग खोज नहीं की गयी थी; किंतु भोजन करानेके लिये तो खोज आवश्यक थी। सब आये; किंतु बाजेवाले नहीं आये। बारातवालोंसे पूछा गया—'आपके बाजेवाले कहाँ गये?'

उत्तर मिला—'हमारे बाजेवाले कहाँ? उन्हें तो आपने ही भेजा था।'

वे बोले—'मैंने भेजा था, यह आपको किसने कहा?'

वरके पिता—'उन्हीं बाजेवालोंने तो! हमलोग आ रहे थे, ये बाजेवाले रास्तेमें मिले और हमसे बोले क्या अमुक बाबू आप ही हैं? क्या आपके ही पुत्रकी बारात अमुक गाँवमें जा रही है? हमको श्री···ने आपके ही लिये भेजा गया है!'

उत्तर सुनकर वे अवाक् रह गये। उन्होंने अधिक पूछताछ नहीं की। भोलेनाथकी अद्भुत कृपाका प्रत्यक्ष अनुभव करके वे रोने लगे। इतना रोये कि घिग्घी बँध गयी, किंतु इस रोनेमें जो आनन्द था, उसका अनुभव कोई भाग्यवान् भक्त ही कर सकता है।—**रघुनन्दनप्रसादसिंह**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

मैं तुम्हारा मित्र हूँ

पहलेकी बात है—कलकत्तेमें एक दिन मैं अपने पड़ोसी मित्र रामप्रतापके साथ गंगा नहाने जा रहा था। रास्तेमें भीड़ थी। हम लोगोंके स्वभावमें कुछ उद्दण्डता तथा अल्हड़पन था। जवान उम्र, घरमें पैसे, किसीका नियन्त्रण नहीं। हम दोनों गंगा-स्नानके पुण्यके लिये नहीं, मौजके लिये नहाने जाया करते थे। रास्तेमें मनमाना बोलते, हँसते, राह चलतोंकी दिल्लगियाँ उड़ाते चलते थे। रास्तेमें कीचड़ था। एक सज्जन—कुछ अधेड़ उम्रके, चश्मा लगाये हमारे आगे-आगे जा रहे थे। शायद कुछ श्लोक-पाठ कर रहे थे। मैंने उनको तंग करनेके लिये छेड़खानी की। उन्होंने मुड़कर हमलोगोंकी ओर देखा और मुसकराकर शान्तिसे चलने लगे। हमलोग तो उनकी शान्ति भंग करना चाहते थे, अतएव बेमतलब अनाप-शनाप बकने लगे। इसपर भी उनकी शान्ति भंग नहीं हुई। वे बीच-बीचमें हमारी ओर देखकर मुसकरा देते। पर हमलोगोंकी उद्दण्डता उनकी हँसीको कैसे सह सकती थी। मैंने बगलसे निकलकर कोहनीसे बड़े जोरसे धक्का दिया, वे कीचड़में गिर पड़े और मैं ठहाका मारकर हँस पड़ा। इतनेमें देखा—मेरा साथी रामप्रताप भी फिसलकर गिर पड़ा है। शायद उन सज्जनके गिरनेकी खुशीमें वह अपनेको सँभाल न सका हो और उसका पैर फिसल गया हो। लोग इकट्ठे हो गये। कीचड़में लथपथ वे सज्जन उठकर खड़े हो गये। उनका चश्मा टूट गया। धोती, चद्दर, नहाकर पहननेको लाये हुए कपड़े, सारा शरीर कीचड़से लथपथ हो गया था। चश्मेके काँचकी नाकपर एक खरोंच लगी थी। शायद और अंगोंमें भी चोट लगी हो। उन्होंने उठते ही मेरी ओर देखा, फिर पास ही गिरे हुए मेरे साथी रामप्रतापको सँभालकर उठाने लगे। रामप्रतापके दाहिने हाथमें काफी चोट आयी थी। वह बहुत बेचैन था। उन्होंने तथा मैंने बड़ी कठिनतासे उसे उठाया। वह वेदनाके मारे अत्यन्त व्याकुल था।

कुछ दूर खड़े कंस्टेबलको उन्होंने पुकारा। पुकारते ही वह आया और उन सज्जनकी ओर देखकर तथा मानो उन्हें पहचानकर उसने बड़े अदबसे सलाम किया और आज्ञा माँगी—'क्या करूँ?' उन्होंने शान्तिपूर्वक कहा—'एक घोड़ागाड़ी लाओ, इन्हें अस्पताल ले जाना है।' कंस्टेबलने बड़े सम्मानसे कहा—'हुजूरके कपड़े भी कीचड़से भर गये हैं। हुजूर! गंगास्नानको पधारें। मैं अभी थानेसे दारोगाजीको कहकर और सिपाही ले आता हूँ। हुजूर हुक्म दें तो दारोगाजीको ही ले आऊँगा और इनको अस्पताल ले जाऊँगा। इलाजकी सब व्यवस्था हो जायगी।' मैं समझ गया कि ये सज्जन पुलिसके कोई बड़े अधिकारी हैं। मैं रो पड़ा और थर-थर काँपने लगा। मैंने उनके पैर पकड़ लिये। उन्होंने हँसते हुए कहा—'भैया! तरुणावस्थामें अल्हड़पन हुआ ही करता है। आप डरिये नहीं। हाँ, भविष्यमें इतना ध्यान रखिये कि जिसमें अपना तथा किसी भी दूसरेका किसी प्रकार भी नुकसान या अहित होता हो, वैसी अल्हड़ता मत किया कीजिये।' मुझसे इतना कहकर उन्होंने कांस्टेबलसे कहा—'तुम ड्यूटीपर हो, इसलिये थाना जानेकी जरूरत नहीं है। सिर्फ एक घोड़ागाड़ी ले आओ। इनको मैं ही अस्पताल ले जाऊँगा। सहायताके लिये इनके साथी ये सज्जन मेरे साथ जायँगे ही।'

मेरी विचित्र दशा थी। शरीरमें पसीना आ रहा था। डर तो था ही। साथ ही इन देवता पुलिस-अफसरके बर्तावसे मैं आश्चर्यचकित था और मैं यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा था कि मेरा स्वभाव या जीवन ही बड़ी तेजीसे बदल रहा है। मुझे अपनी करनीपर पश्चात्ताप था। भविष्यमें वैसा कोई भी कर्म न करनेकी मैंने मन-ही-मन प्रतिज्ञा की। मेरा मन उन देवमानवके चरणोंके प्रति भक्ति-श्रद्धासे अवनत हो रहा था।

गाड़ी आयी। मैंने तथा उन्होंने रामप्रतापको सहारा देकर गाड़ीपर चढ़ाया। वे उसी कीचड़से सने शरीरसे अस्पताल पहुँचे। उन्हें कोई लाज-शरम नहीं आयी। उन्होंने वहाँ अपना परिचय दिया; तब पता लगा कि वे पुलिसकप्तान (सुपरिन्टेन्डेंट) हैं और बड़े सम्भ्रान्त कुलके सज्जन हैं।

डॉक्टरोंने बड़े सम्मानके साथ उन्हें बैठाया। हाथ-पैर धुलवाये। उन्होंने कहा—'हम दोनों ही कीचड़में रपटकर गिर गये।' रामप्रतापकी समुचित चिकित्सा हुई। हड्डी नहीं टूटी थी। दवा लगाकर पट्टी बाँध दी गयी।

एक दूसरी घोड़ागाड़ी मँगवाकर उन्होंने हम दोनोंको विदा करते हुए कहा—'भाई, डरना नहीं। मुझे तो बड़ा दुःख इस बातका है कि आपलोगोंका मजा इन्हें चोट लगनेसे किरकिरा हो गया। मैं ही गिरा होता तो मेरा कुछ बिगड़ा नहीं था और आपका मनोरंजन हो जाता। मैं तो गंगास्नान करने जा ही रहा था। कीचड़ वहाँ धुल जाता। पर भाई! जैसा मैंने इनसे कहा है, ऐसे मनोरंजनकी चेष्टा मत किया करो, जिससे आपकी तथा दूसरेकी हानि हो या अहित हो। मुझे अपना मित्र मानना, सचमुच तुम मेरे मित्र हो और मैं तुम्हारा मित्र हूँ। कभी कोई मेरे योग्य कार्य हो तो निस्संकोच मिलना। मेरा ····· नाम है।'

हम लोग तो सुनकर चकित हो गये। मैंने भक्ति-विनम्र स्वरसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया। सचमुच वे हमारे यथार्थ मित्र ही थे और मित्र ही बने रहे। उनसे शुभकी ओर जीवन-परिवर्तनमें समय-समयपर बड़ी सहायता मिली। मित्रका धर्म ही है—

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।

हमलोगोंका जीवन—जो हजारों उपदेश-वाक्योंसे अबतक नहीं बदला था और आगे भी नहीं बदल सकता था; क्योंकि हमें अपनी उद्दण्डताके सामने न किसीका उपदेश सुननेकी फुरसत थी, न श्रद्धा ही थी—आज इन दैवपुरुषके आचरणसे अकस्मात् बदल गया और तबसे हम भी बदल गये।—**गजानन शर्मा**

(२)

विलक्षण सद्व्यवहार

जगन्नाथजी और महानन्दजी सगे भाई थे। बड़ा प्रेम था। घरका बँटवारा हो चुका था, परंतु परस्पर कोई भी स्वार्थजनित भेद नहीं था। बड़े भाई जगन्नाथजीकी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र सम्पतरामने अपने चाचा महानन्दका एक बार कहना नहीं माना, बड़ी बुरी तरह पेश आया और उनकी इच्छाके विपरीत कोई ऐसा काम अपने मनसे कर लिया, जिससे उनके कुलकी प्रतिष्ठामें बड़ा धब्बा लगता था। इस बातको लेकर बड़ा मनमुटाव हो गया और वह यहाँतक बढ़ा कि दोनों परिवारोंमें परस्पर बोलचाल बन्द हो गयी। बोलना बन्द भी पहले सम्पतरामने ही किया।

एक बार किसी झूठे मुकदमेंमें सम्पतराम फँस गया और पकड़ लिया गया। भाग्यवश सम्पतरामकी आर्थिक स्थिति उस समय बहुत कमजोर हो गयी थी। मामला था तो झूठा, पर बड़ा संगीन था। जमानतकी बड़ी चिन्ता हुई। चाचा महानन्द सब प्रकार समर्थ थे, पर उनसे वह सहायताके लिये कैसे कहता। उसके मनका भाव यही था कि कहनेपर भी महानन्दजी सहायता नहीं करेंगे; क्योंकि वह उनका बड़ा अपमान कर चुका था। फिर महानन्दजी वहाँ थे भी नहीं। सम्पतरामने अपनेको सर्वथा असहाय अनुभव किया।

महानन्दजीको उनके लड़के लक्ष्मीनारायणने तारद्वारा समाचार भेजा। लक्ष्मीनारायणके मनमें सहानुभूति नहीं थी। उसने केवल सूचना दी थी। सूचना देनेमें भी उसका क्या अभिप्राय था, पता नहीं। पर सूचना मिलनेकी देर थी, महानन्दजी पहली ट्रेनसे आये और सीधे कोर्टमें जाकर उसकी जमानत ली और छुड़ाकर अपनी ही गाड़ीमें सम्पतरामको घर ले आये। सम्पतरामकी विचित्र दशा थी। वह अपनी करनीपर पश्चात्ताप करता हुआ रो रहा था। महानन्दजी पहले बोले। कहा—'बेटा! घबराओ नहीं। तुम नहीं बोलते थे—मैं भी नहीं बोलता था। पर इससे तुम पराये थोड़े ही हो गये थे।' बड़े प्यारसे महानन्दजीने सम्पतरामके सिरपर हाथ फेरा। उसे नहला-धुलाकर चाचा-चाचीने अपने पास बैठाकर स्नेहसे भोजन कराया। उसकी पत्नी तथा बच्चोंको भी बुला लिया गया।

अच्छे वकीलोंकी नियुक्ति की गयी। मामला संगीन होनेपर भी झूठा था। इससे सम्पतराम बेदाग छूट गया। चाचा-चाचीको बड़ी खुशी हुई।

इसके बाद महानन्दजीने सम्पतरामको फिरसे पैतृक सम्पत्तिमें और कारोबारमें हिस्सेदार बना लिया। दरिद्रावस्थाको प्राप्त सम्पतराम पुनः लखपती हो गया। अब तो सम्पतराम अपने चाचा श्रीमहानन्दजीको ईश्वरके तुल्य मानकर उनकी रुचिका अनुसरण करने लगा।

इस व्यवस्थासे सम्पतरामको सुखी देखकर चाचीको सबसे अधिक प्रसन्नता हुई; क्योंकि सम्पतरामकी माताका बहुत छोटी अवस्थामें देहान्त हो गया था। सम्पतरामको चाचीने ही बड़े लाड़-चावसे पाला था। सम्पतराम भी उसे माँ ही मानता और कहता था। संग-दोषसे बीचमें बुद्धि बिगड़ी थी। अब इस विपत्ति तथा विपत्तिके समय किये हुए चाचा-चाचीके अतुलनीय सद्व्यवहारने उसकी

बुद्धिको पुनः सात्त्विक बना दिया। सारी दोषाग्नि चाचाकी स्नेह-सुधा-वर्षासे सदाके लिये शान्त हो गयी।

लक्ष्मीनारायणको पहले कुछ यह व्यवस्था प्रतिकूल-सी लगी; परंतु पीछे वह भी समझ गया और सारा परिवार दिव्य आनन्दसमुद्रमें लहराने लगा।—**रामकुमार गुप्त**

(३)

क्रोधपर विजय

यद्यपि मैंने सत्यके सम्बन्धमें अध्ययन किया है और उसके स्वरूपको समझती भी हूँ, फिर भी अपने सप्तवर्षीय पुत्रके प्रति मेरे स्वभावमें बड़ा कोध भर गया था। जबसे उसने घुटनोंके बल चलना आरम्भ किया, तभीसे वह कुछ ऐसी चेष्टाएँ करने लगा, जिससे मुझे क्रोध आ जाता। शुभकी शक्तिमें मेरा विश्वास होनेपर भी उसके प्रतिकूल तथा शान्तिके लिये प्रार्थना करते रहनेपर भी, मैं उसपर बरस पड़ती (कभी-कभी तो पीटने भी लग जाती)। मैं प्रायः आपेसे बाहर हो जाती।

मैं जानती हूँ कि मेरे क्रोधी स्वभावने ही मुझे एक असाध्य चर्मरोग प्रदान कर दिया, जिसे मैं पाँच वर्षोंसे भोगती आ रही हूँ। मेरे छोटे बच्चेको भी नासूर हो गया, जिससे वह बीच-बीचमें बहुत कम सुनने लगा। यह जानते हुए भी कि हमारे विचारोंका हमारे शरीरपर कितना अधिक प्रभाव पड़ता है, मैं अपने क्रोधपर विजय नहीं पा सकी। वास्तवमें क्रोधका कारण मेरे पुत्रकी चेष्टाएँ उतना नहीं थीं, जितना उन चेष्टाओंसे भभक उठनेकी मेरी प्रकृति!

गतवर्ष लेन्टनामक व्रतके आनेके पहले मैंने क्रोधपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय किया। मेरे कई मित्रोंने उस पर्वपर अमुक-अमुक वस्तुओंका परित्याग करनेकी बात कही, तो मैंने क्रोधके परित्यागका संकल्प किया।

लेन्टके प्रथम दिन ही मैंने अपने बच्चोंसे कहा कि 'मैंने अब भगवान्‌को क्रोध न करनेका वचन दे दिया है और अपने वचनपर दृढ़ रहनेके लिये मुझे समस्त परिवारकी सहायता आवश्यक है।' बच्चे बड़े प्रभावित हुए और एक सप्ताहतक—पूरे एक सप्ताहतक घरमें सुख-शान्तिका राज्य रहा।

फिर पहली स्थिति आने लगी। बच्चोंने फिर अपनी छेड़खानी शुरू की; साथ ही जो काम उन्हें करने चाहिये थे, उन्हें करना छोड़ दिया। इधर मुझे भी अपना पारा चढ़ता हुआ लगा। मैं प्रायः उच्च स्वरमें पुकार उठती, 'भगवन्! कृपा करके मेरी सहायता करो, जिससे मुझे क्रोध न आये।' तथा जब स्थिति सरल बन जाती और फिर सुव्यवस्था छा जाती, तब मैं पुनः निश्चय करती—'मैं क्रोधित नहीं हूँगी' और फिर कहती, 'प्रभु! तुझे धन्यवाद है।'

बच्चोंने भी मेरे सत्संकल्पका समर्थन करना आरम्भ किया। मैं सुनती कि वे अपने सोनेके कमरेमें कह रहे हैं, 'आओ, और कुछ करनेके पहले हम अपने बिस्तर ठीक कर लें, जिससे भगवान्‌के सामने दिये हुए अपने वचनको माँ निभा सके।'

अब हमारे घरमें आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। कभी-कभी ऐसा भी हुआ कि क्रोधको दबाये रखनेके अपने निश्चयपर जब मैं अडिग न रह सकती, तब मैं सचमुच अपने बच्चोंके सामने घुटने टेककर भगवान्‌से अपनेको तथा जिस बच्चेके कारण क्रोध आया होता, उसको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना करती। फिर मैं बच्चोंके साथ बैठकर बात करती, मैं उनसे कहती 'तुमलोग मुझे वैसे ही क्षमा करो जैसे कि मैंने तुमलोगोंको क्षमा कर दिया है।' और फिर उनको बताती कि 'हमारे परस्परके क्षमादानके कारण भगवान्‌ने भी हमको क्षमा कर दिया है।' इसके परिणाममें हमको स्वर्गीय सुख मिला है।

और हाँ, चर्मरोगमें भी सुधार दिखायी दे रहा है। हमें कुछ ऐसी क्रियाएँ बतायी गयी थीं, जिनके फलस्वरूप मेरे बच्चेका नासूर भी अच्छा हो रहा है और उसकी श्रवणशक्ति अब प्रायः ठीक है। इसमें सन्देह नहीं कि इस सुधारके यथार्थ कारणको हम जानते हैं और हमारा हृदय कृतज्ञतासे परिप्लुत है।*—**एम० एस० (एक अमेरिकन महिला)**

---

* मानसिक भावों, विचारों तथा क्रियाओंका शरीरपर न्यूनाधिक रूपसे बड़ा प्रभाव पड़ता है। 'काम' के विचारोंसे पागलपन, नपुंसकता, मधुमेह और प्रमेहके रोग उत्पन्न होते हैं। विषाद, भय और निराशाके विचारोंसे शरीरमें अशक्ति, कम्पन, अनिद्रा, सिरदर्द आदि; क्रोधके विचारोंसे पाया (एकजिमा), कुष्ठ, हृद्रोग आदि; लोभके विचारोंसे अपचन, उदरव्याधि, यकृत्-शूल आदि। इसी प्रकार अन्यान्य कुविचारोंसे विभिन्न रोग उत्पन्न होते तथा बढ़ते हैं। इसी तरह शम, दम, तितिक्षा, क्षमा, त्याग, भगवद्विश्वास, आत्माकी नित्य पूर्णता, निरामयता और अमरताके विचारोंसे रोगनाशके साथ ही विलक्षण स्वस्थता प्राप्त होती है।—सम्पादक

मनन करने योग्य

कुसंगका परिणाम

गंगाजीके किनारे गृध्रकूट नामक पर्वतपर एक विशाल पाकड़का वृक्ष था। उसके खोखलेमें एक अन्धा गीध रहा करता था। उसका नाम जरद्गव था। वह गीध बूढ़ा और कमजोर था, इसलिये उस वृक्षपर रहनेवाले सभी पक्षी अपने-अपने भोजनमेंसे थोड़ा-थोड़ा भाग उसे दे दिया करते थे। गीध भी अपने जीवनके अनुभव और ज्ञानकी बातें सुनाकर उन सबके प्रेम तथा आदरका पात्र बना हुआ था। इस प्रकार उस वृक्षका वातावरण उन सबके सामंजस्यसे बड़ा ही सुखद बना हुआ था।

एक दिन दुर्भाग्यकी काली छायाके रूपमें दीर्घकर्ण नामक एक बिलाव पक्षियोंके बच्चोंको खानेके लिये उस पेड़पर आ पहुँचा। उसे देखकर बच्चे घबड़ाकर चीं-चीं करने लगे। बच्चोंका भयभीत स्वर सुनकर गीधने जोरसे पूछा—'कौन है?' गीधकी आवाज सुनकर बिलाव भयभीत हो गया और मनमें विचार करने लगा कि हाय! मैं तो यहाँ आया था लोभवश अपने भोजनकी तलाशमें, पर लगता है अब मैं ही मृत्युको प्राप्त हो जाऊँगा। मृत्युको सन्निकट जान उस बिलावने कपट-बुद्धिका आश्रय लिया और धीरेसे कहा—'महाराज! मैं आपको प्रणाम करता हूँ।' गीध बोला—'तू कौन है?' वह बोला—'मैं बिलाव हूँ।' गीधने कहा—'दूर हट जा; नहीं तो मैं तुझे मार डालूँगा।'

बिलाव बोला—'महाराज! पहले मेरी बात तो सुन लीजिये, फिर मैं मारनेयोग्य होऊँगा तो मुझे मार डालियेगा।'

गीध बोला—'बता, तू किसलिये यहाँ आया है?' बिलावने कहा—'महाराज! मैं नित्य गंगा-स्नान करता हूँ, मांस-भक्षणका त्याग करके इन्द्रिय-संयम और ब्रह्मचर्यका पालन तथा चान्द्रायणव्रत भी करता हूँ। पक्षियोंद्वारा आपके धर्म-ज्ञानकी प्रशंसा सुनकर मैं आपके पास धर्मका रहस्य सुनने आया हूँ। महाराज! मैं आपका अतिथि हूँ, श्रद्धा-भावसे आपके पास आया हूँ, इसलिये मेरा त्याग न कीजिये।' गीधने कहा—'बिलाव मांसभक्षी होता है और यहाँ पक्षियोंके छोटे-छोटे बच्चे रहते हैं। मैं इन सबका रक्षक हूँ, अतः मैं तुझे यहाँ नहीं रहने दूँगा। तेरी-मेरी मित्रता नहीं हो सकती।'

बिलावने भूमिका स्पर्श करके शपथ लेते हुए कहा—'महाराज! मैंने धर्मज्ञोंसे सुना है कि 'अहिंसा ही परम धर्म है' इसलिये मैंने मांस-भक्षण छोड़ दिया है। मैं फल और अन्नपर ही जीवन-निर्वाह कर रहा हूँ। नित्य गंगा-स्नान और चान्द्रायणव्रतसे मेरी मनोवृत्ति बदल गयी है। आप सत्पुरुष हैं, आपका दर्शन ही मेरे लिये मंगलमय है, अतः आप मुझे अपने चरणोंमें आश्रय दें।'

बिलावकी मीठी एवं कपटभरी बातोंपर विश्वास करके गीधने उसे अपना मित्र बना लिया और वह दुरात्मा बिलाव वहीं रहने लगा।

कुछ दिन बीत जानेपर जब वह गीधका विश्वासपात्र बन गया तो उसकी मांसभोजी प्रवृत्ति उसे पक्षिशावकोंका भक्षण करनेके लिये प्रेरित करने लगी। वह यह भी समझ गया था कि गीध अन्धा है, अतः यह मेरी हानि नहीं कर सकेगा। फिर क्या था, अगले दिनसे जब सब पक्षी अपने-अपने घोंसलोंसे भोजनकी तलाशमें दूर चले जाते तो उसने उनके घोंसलोंमें घुसकर उनके बच्चोंको खाना शुरू कर दिया। पक्षी रोज वापस लौटकर अपने बच्चोंको न पाते तो बहुत दुखी होते। इस प्रकार बिलाव उन पक्षियोंके सभी बच्चोंको खा गया। बच्चोंको खानेके बाद वह उनकी हड्डियोंको गीधके निवास-स्थानपर रख देता था। अन्धा होनेके कारण गीधको कुछ पता भी नहीं चल पाता था। एक दिन सभी पक्षी शोकसे व्याकुल हो अपने बच्चोंको ढूँढ़ते हुए उस खोखले स्थानतक आये। वहाँ उन्हें बिलाव दिखायी नहीं दिया; क्योंकि वह तो चुपचाप वहाँसे कबका भाग चुका था। पक्षियोंने जब गीधके आवासमें अपने बच्चोंकी हड्डियाँ देखीं तो गीधको ही अपने बच्चोंका हत्यारा समझकर उसे मार डाला। इस प्रकार दुष्टको साथ रखनेके कारण निर्दोष गीध मृत्युको प्राप्त हुआ।

इसीलिये कहा गया है कि दुष्ट व्यक्तिका साथ घातक होता है।

बेचारा गीध सभी पक्षियोंके बच्चोंकी रक्षाका उपकारी कार्य करता था, किंतु हिंसक बिलावका संग होनेसे न केवल स्वयं मारा गया बल्कि पक्षियोंके बच्चे भी कालके गालमें चले गये। इसीलिये कुसंगसे सदा बचते रहना चाहिये। **[हितोपदेश, मित्रलाभ]**

प्र० ति० २०-७-२०१६
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016